॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-08-24
प्रकाशन दिनांक = 05-08-24

अगस्त २०२४

वर्ष ५३ : अङ्क १०
दयानन्दाब्द : २००
विक्रम-संवत् : श्रावण-भाद्रपद २०८१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- हाथरस कांड का असल दोषी कौन ४
- यज्ञ केवल रूपक हैं या कुछ और भी ? ६
- स्वतन्त्रता दिवस की सार्थकता १०
- बेटे की चाहत: अंधविश्वास, अपराध.... १३
- छोटी-छोटी पर बड़ी बातें – ४ १६
- अपूर्व विद्वत्ता १८
- अद्वितीय महापुरुष योगेश्वर कृष्ण १९
- ब्रह्मचर्य बल २१
- योग २२
- स्वामी भद्राचार्य जी का अनर्गल प्रलाप २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ४००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ६००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥

—ऋ० ४।१७।१३

शब्दार्थ—मघवा = महान् सामर्थ्यवान् **त्वम्** = एक **क्षियन्तम्** = नष्ट होते हुए को **अक्षियन्तम्** = नाश से रहित **कृणोति** = करता है अथवा **क्षियन्तम्** = बसते हुए को **अक्षियन्तम्** = बे-ठिकाना कर देता है, अथवा **अक्षियन्तम्** = बे-ठिकाने को **क्षियन्तम्** = बसनेवाला, ठिकानेवाला कर देता है और **रेणुम्** = धूल को **समोहम्** = समुदाय, संघात रूप में **इयर्त्ति** = गति देता है, अथवा **समोहम्** = संघात को **रेणुम्** = धूलि के रूप में गति देता है। वह **अशनिमान्+इव** = विद्युत् वाले की भाँति, वज्र-धारी के समान **विभञ्जनुः** = विभाग करनेवाला, तोड़ने-फोड़नेवाला और **द्यौः** = प्रकाशमान् तथा प्रकाशाधार है, **उत** = और वह **मघवा** = ऐश्वर्यों का स्वामी, अन्तर्यामी **स्तोतारम्** = स्तुति करनेवाले को **वसौ** = धन में **धात्** = धारण करता है।

व्याख्या—इस मन्त्र में भगवान् के प्रलयकारी स्वरूप का वर्णन किया गया है, किन्तु साथ ही आश्वासन भी दिया है कि धनदाता भी वही है—

स्तोतारं मघवा वसौ धात्—ईश्वर स्तोता को धन में धारण करता है।

धन देने की एक शर्त है—स्तोता होना। स्तोता = स्तुतिकर्ता । स्तुति का अर्थ लोग बहुत अन्यथा समझते हैं। लोग समझते हैं कि कुछ विशेष शब्दों या वाक्यों का उच्चारण करना स्तुति है, जैसे यह कहना कि 'परमेश्वर तू दयालु है, कृपालु है, सब सुखदाता है, जगद्विधाता है, चराचर का अधिष्ठाता है,' इत्यादि, परन्तु ऐसा है नहीं, स्तुति का वास्तविक अर्थ है-किसी वस्तु के गुण-दोष जानकर, अपने गुणों से उसकी तुलना करके, अपने में जिन गुणों का अभाव है या जो कमी है उसकी पूर्ति की भावना का नाम स्तुति है, अर्थात् इस ज्ञान से अपना चरित्र सुधारना ही यथार्थ स्तुति है।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास में सगुण-निर्गुण-स्तुति का भेद बतलाकर लिखा है—

"इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं, वैसे गुण-कर्म-स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे और जो केवल भाँड के समान परमेश्वर का गुण-कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है", अर्थात् अपेक्षित गुण के कीर्तन के साथ तदनुगुण पुरुषार्थ भी करना स्तुति है । ऐसी स्तुति करनेवाला जो जन मघवा की सकलैश्वर्य सम्पन्न प्रभु की स्तुति करता है, वह अवश्य धन पाता है, क्योंकि वह प्रभु बहुत बड़ा दाता है, जैसाकि ऋग्वेद [४।१७।८] में कहा—**'दाता मघानि मघवा सुराधाः'**—उत्तम धन

वाला, अर्थात् उत्तम रीति से आराधित हुआ मघवा=पूज्य धनी प्रभु पूज्य धन देता है । इसी कारण आस्तिक उसी से माँगते हैं—

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।

—ऋ० १०।१२१।१०

जिस अभिलाषा से तुझे पुकारें, वह हमारी पूरी हो, हम धनों के स्वामी हों। आराधना शर्त है, पुकारना शर्त है । देने में वह त्रुटि नहीं करता, क्योंकि वह—**'क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोति'** – अमीर को गरीब और गरीब को अमीर कर देता है । वेद में ही कहा है—

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥

—ऋ० ४।१७।९

चुना जाकर यह भगवान् उत्तम अवस्था का विस्तार करता है, जो भगवान् जीवन- संग्राम में अकेला सहायक है, जिसको वह सम्भजन करता=चुनता है, वह अन्न, बल, ज्ञान धारण करता है, अतः इसकी मैत्री में हम इसके प्यारे-प्रेमी बनें, अर्थात् वह व्यर्थ ही धनी को दरिद्र या दरिद्र को धनी नहीं कर देता, गुण-कर्म देखकर ही सब-कुछ करता है। भगवान् की स्तुति का कैसा सुन्दर फल है! इसको ऋग्वेद में अधिक स्पष्ट शब्दों में यों कहा है—

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्ताः ॥

—ऋ०४।१७।१९

स्तुत हुआ पूज्य परमेश्वर अकेला ही अनेक अप्रतिम[1] बाधाओं का नाश कर देता है, क्योंकि स्तोता इसका प्यारा है । उससे होने वाले कल्याण को न देव=दैवी शक्तियाँ और न मनुष्य रोक सकते हैं, क्यों न इस महाबली की स्तुति करें ! ❑❑

१. भयंकर

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी ।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यान्महोदयः॥ —चाणक्यनीति

अर्थ—गलत काम करने के पीछे पछताने वाले पुरुष की जैसी बुद्धि होती है, वैसी यदि पहले होती तो किसकी बड़ी समृद्धि न होती, अर्थात् अवश्य होती ।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते संघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥

—चाणक्यनीति

अर्थ—जैसे घिसने, काटने, तपाने और पीटने—इन चार प्रकार से सोने की परीक्षा की जाती है, वैसे ही दान, शील, गुण और आचरण इन चारों प्रकार से पुरुष की भी परीक्षा की जाती है।

हाथरस कांड का असल दोषी कौन बाबा या अंधविश्वास ?

—धर्मपाल आर्य

हाथरस में कथित सत्संग और 122 लोगों की मौत के बाद लोग कह रहे हैं कि बाबा परमात्मा है वह ब्रह्माण्ड का स्वामी है, उसने इस संसार को रचा है, वो कैसे अपने भक्तों की मौत का कारण हो सकते हैं। सत्संग में जिन लोगों की मौत हुई उन्हें मोक्ष मिल गया। ये बयान उन लोगों के नहीं जो जिन्दा बच गये बल्कि वो लोग भी कह रहे हैं जिन्होंने अपनों को खोया है। किसी ने पत्नी को खोया तो किसी ने बेटी को किसी ने 20 साल बाद पैदा हुआ बेटा तक खो दिया।

कहते हैं कि आस्था इन्सान को मजबूत बनाती है, लेकिन आस्था की चरम अवस्था इन्सान को कमजोर भी बना देती है। आस्था पागल भी कर सकती है और इन्सान को भेड़ बनाकर मौत का निवाला भी। साल 1867 हरिद्वार कुंभ में पाखंड खंडनी पताका फहरा स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कहा था–"गिरना या फिसलना सरल है, संभलना समझदारी है पर, संभल कर उठकर खड़े होना, अपने को सच्चाई के मार्ग पर स्थापित कर लेना बेहद कठिन है। सत्य को जानना ही पाखंड को तोडना है और उसका नाश करना है।" किन्तु आज आधुनिक युग में जहाँ आशा थी पाखंड कम होगा लेकिन हाथरस की घटना से अनुभव हुआ कि अपने चरम पर जा रहा है।

हाथरस की दर्दनाक घटना के बाद जिम्मेदार की तलाश जारी है। सी॰ बी॰ आई॰ जाँच की मांग की जा रही है, एस॰ आई॰ टी॰ का गठन हो रहा है। सवाल वही है कि घटना का जिम्मेदार कौन है? जहाँ देश के पढ़े-लिखे बौद्धिक वर्ग को एक सुर में बोलना चाहिए था कि इस हादसे का जिम्मेदार पाखंड और अंधविश्वास है, वहां इसके लिए कोई प्रशासन तो कोई भीड़ को जिम्मेदार ठहरा रहा है।

सोचिये आखिर ये सत्संगी लोग कौन हैं? कहां से आते या कहाँ से लाये जाते हैं, क्यों ये किसी बाबा के लिए मरने-मारने तक के लिए उतारू हो जाते हैं? क्या इस सबका कारण धर्म है या फिर अंधविश्वास जिसका फायदा कथित बाबा गुरु घंटाल यहाँ तक कि धर्मांतरण करने वाले गैंग तक उठा रहे हैं?

दूसरा सवाल ये भी कि आखिर कहाँ से अचानक इतनी बड़ी संख्या में ये बाबा पैदा हो रहे हैं, जो थोड़े से समय के अन्दर अरबों-खरबों का साम्राज्य खड़ा कर लेते हैं। हाथरस वाले बाबा का असली नाम सूरज पाल उर्फ नारायण हरि है। वह एटा के रहने वाले हैं। खुद की आर्मी बना रखी है और बाबा पर यौन शोषण समेत 5 मामले दर्ज हैं। लेकिन उनका कनेक्शन सियासत से भी है। कुछ मौकों पर यू॰ पी॰ के कई बड़े नेताओं को उनके मंच पर देखा गया। इसमें समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिलेश यादव तक का नाम भी शामिल है।

बताया जा रहा है कि यौन शोषण के आरोपी एक बर्खास्त कांस्टेबल से बाबा बने सूरजपाल जाटव के कथित सत्संग में अब तक 122 लोगों की मौत हो चुकी है। मरने वालों में ज्यादातर बच्चे, बुजुर्ग और महिलाएं हैं। लेकिन सवाल जिन्दा है कि आखिर ये सत्संगी लोग कौन हैं?

दरअसल ये वो लोग हैं जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करते। ये लोग विश्वास करते हैं बाबाओं पर। ये लोग हर एक छोटे से छोटे काम के लिए कर्म पर भरोसा ना करके बाबाओं पर भरोसा करते हैं। परेशानी का निवारण, सुख की इच्छा दुःख का निवारण सब काम बाबा करा रहे हैं। असल में इस भीड़ के मूल में दुःख है, अभाव है, गरीबी है किसी का जमीन का झगड़ा चल रहा है तो किसी को कोर्ट-कचहरी के चक्कर में अपनी सारी जायदाद बेचनी पड़ी है। किसी को सन्तान चाहिए तो किसी को नौकरी! शायद ये तमन्नाएं ही जन्म देती हैं धर्मांतरण को डेरों को, बाबाओं और बंगाली बाबाओं को।

आज दुनिया नए दौर से गुजर रही है, हर कोई एक बाबा एक गुरु चाहता है। लेकिन, ये बाबा महर्षि रमण, महर्षि चरक, महर्षि पाणिनि, पतंजली, बाल्मीकि जी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी जैसे महान ऋषि और समाज को नई चेतना देने वाले नहीं हैं। ये सिर्फ बाबा सर्विस प्रोवाइडर हैं, यानी वो जनता को जरूरी सेवाएं देते हैं।

सूरजपाल जाटव उर्फ नारायण हरी साकार बाबा के भक्तों के आप इंटरव्यू सुनिए उनके बयान सुनिए 90 प्रतिशत लोग एक दावा कर रहे हैं कि किसी का बच्चा बीमार था। किसी की पत्नी बीमार थी तो किसी के माता-पिता बीमार थे। वो बाबा के कारण ठीक हुए, यानि एक चीज समझ आ सकती है कि 90 प्रतिशत लोग भक्त नहीं बल्कि मरीज हैं। चाहें वो फिजिकल बीमार हो या मानसिक तो इन्हें भक्त कहना भी ठीक नहीं है। साफ तौर पर ये बीमार लोग हैं।

अगर बीमार हैं तो कथित बाबा के पास ही क्यों आते हैं? सवाल ये भी हो सकता है। दरअसल देश की आबादी बहुत है। 80 प्रतिशत तो सरकारी राशन पर जिन्दा बताये जाते हैं। बीमारी भी है तो देश में सरकारी अस्पताल उतनी संख्या में नहीं जितनी जरूरत है। प्राइवेट अस्पताल इतना महंगा इलाज करते हैं कि एक गरीब आदमी जाने से पहले सौ बार सोचता है। तो ऐसे में कमान इन बाबाओं ने सम्हाल ली। बाबा चमत्कार का दंभ भरते हैं। जब एक मरीज कहता है कि वो बाबा के चमत्कार से ठीक हुआ तो फिर दूसरा कहता है वो भी ठीक हुआ। तीसरा कहता है उसे भी आराम मिला तो मनोविज्ञान के अनुसार चौथा खुद कहेगा कि उसे भी अब आराम है। क्योंकि वो भीड़ का हिस्सा बनना चाहेगा वो भी खुद को बड़ा भक्त होने का दावा करेगा।

इस कारण ये गाँवों छोटे शहरों और कस्बों में आम लोगों की जिंदगी का अहम हिस्सा बन गए हैं। राजनैतिक नजरिए से देखें, तो ये बाबा वोट बैंक का काम करते हैं। यहां तक कि कई राजनेता भी इनके भक्त बन जाते हैं। यहां पर इन बाबाओं और नेताओं के बीच लेन-देन का खुला कारोबार चलता है। ये लेन-देन वोट, आस्था और पैसे का होता है। बाबा के पास भक्तों की भीड़ है तो राजनेताओं को वोट चाहिए इस कारण इनका गठबन्धन बन चुका है।

धर्म और राजनीति के इस लेन-देन से भारतीय लोकतंत्र का पहिया घूमता है। लेकिन हमें बाबाओं की असली पहचान और पहुंच को समझना होगा। ये बाबा स्थानीय स्तर के बिचौलिए हैं, जो अपने अंदर जादुई ताकत होने का दावा करते हैं। एक तरफ ये लोगों को सिखाते हैं, त्याग करो, दान करो, क्या लेकर आये थे क्या लेकर जायेंगे। दूसरी तरफ वो अपनी ताकत और धन-वैभव के लिए भी शोहरत बटोरते हैं। महंगी लक्जरी गाड़ियों में घूमते हैं। कई बार यौन शोषण करते हैं और कई अपराध में लिप्त पाए जाते हैं।

भले ही पिछले कुछ दशकों से उभरने वाले किस्म-किस्म के बाबाओं ने राष्ट्र के मुख पर

(शेष पृष्ठ १५ पर)

यज्ञ केवल रूपक हैं या कुछ और भी ?

–उत्तरा नेरूर्कर, बंगलौर (मो०–९८४५०५८३१०)

पूज्य पण्डित युधिष्ठिर मीमांसक आर्य समाज के मूर्धन्य विद्वानों में से एक रहे हैं । उनकी कृतियों की गहनता व प्रामाणिकता आर्यसमाजी ही नहीं, अपितु सभी मान्यताओं के अध्येता मानते हैं । इसलिए जब पिछले दिनों मैंने उनकी पुस्तक **'श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय'** का स्वाध्याय करते समय उनका यज्ञों के विषय में मत यह पाया कि सभी अग्निहोत्र केवल सृष्टि के क्रिया–कलापों के रूपक हैं और द्रव्ययज्ञ वस्तुतः वेदों में वर्णित नहीं हैं, तो मुझे बहुत झटका लगा। स्वामी दयानन्द ने तो यज्ञों को पर्यावरण का शोधक बताया है और उनको न करना पाप घोषित किया है, तो युधिष्ठिर जी यहां क्या कह रहे हैं, उनका यह मत क्यों बना – यह जानने की मैंने चेष्टा की। इसी अनुसन्धान का संक्षिप्त वर्णन मैं नीचे दे रही हूं ।

पहले हम महर्षि दयानन्द सरस्वती का इस विषय पर मन्तव्य देखते हैं । सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में वे होम की अनिवार्यता का कथन प्रश्नोत्तर रूप में इस प्रकार करते हैं–

प्रश्न : होम से क्या उपकार होता है?

उत्तर : सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य, और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है ।

प्रश्न : चन्दनादि घिसके किसी को लगावे वा घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो । अग्नि में डालकर व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं ।

उत्तर : जो तुम पदार्थ विद्या जानते, तो कभी ऐसी बात न कहते, क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता । देखो, जहां होम होता है, वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है, वैसे दुर्गन्ध का भी । इतने ही से समझ लो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके, फैलके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है ।

प्रश्न : जब ऐसा ही है, तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर, आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा ।

उत्तर : उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकालकर शुद्ध वायु को प्रवेश करा सके, क्योंकि उसमें भेदक शक्ति नहीं है । और अग्नि का ही सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्ध युक्त पदार्थों को छिन्न–भिन्न और हल्का करके, बाहर निकालकर पवित्र वायु को प्रवेश करा देता है ।

प्रश्न : तो मन्त्र पढ़के होम करने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर : मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित हो जाएं और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें । वेद पुस्तकों का पठन–पाठन और रक्षा भी होवे ।

प्रश्न : क्या इस होम करने के बिना पाप होता है ?

उत्तर : हां, क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से दुर्गन्ध उत्पन्न होके, वायु और जल को बिगाड़कर, रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से, प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है, उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है । इसलिए उस पाप के निवारणार्थ, उतना सुगन्ध या उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिए। और खिलाने-पिलाने से उसी एक व्यक्ति को सुख-विशेष होता है। **जितना घृत और सुगन्ध ादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है, उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है।** परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि पदार्थ न खावें, तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न हो सके । इससे अच्छे पदार्थ खिलाना-पिलाना भी चाहिए । परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है, इसलिए होम का करना अत्यावश्यक है । (सत्यार्थप्रकाश, तृतीय समुल्लास)

जबकि उपर्युक्त उद्धरण थोड़ा लम्बा है, और बहुतों को यह ज्ञात भी होगा, तथापि प्रकृत विषय को समझने के लिए इस सम्पूर्ण प्रकरण का पुनः स्मरण बहुत आवश्यक है । यहां स्वामी जी की वैज्ञानिक सूक्ष्म बुद्धि पर तो अचम्भा होता ही है, परन्तु उनके स्पष्ट कथन से विषय में कोई संशय नहीं रह जाता !

इसके विपरीत, **'श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय'** पुस्तक में युधिष्ठिर मीमांसक जी लिखते हैं- "... जितने भी अग्न्याधान से लेकर सहस्र संवत्सरसाध्य पर्यन्त श्रौतयज्ञ हैं, वे जो इस ब्रह्माण्ड में पृथिवी की रचना से लेकर प्रलय पर्यन्त दैव या आसुर यज्ञ हैं, उनका प्रत्यक्ष बोध कराने के लिए ऋषि-मुनियों द्वारा कल्पित किए गए हैं । **वेद में साक्षात् उक्तयज्ञ आधिदैविक हैं, द्रव्य-यज्ञों का साक्षात् विधान वेद में नहीं है।** वेदोक्त आधिदैविक यज्ञों का ज्ञान कराने के लिए, उनके अनुसार जिन द्रव्यमय यज्ञों की कल्पना ऋषि-मुनियों ने की, उनमें यथावत् साम्य होने से, आधिदैविक यज्ञों के विधायक मन्त्रों का ही द्रव्यमय यज्ञों में यथावत् विनियोग किया गया ।" -अग्न्याधान अध्याय, श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय । आगे वे ब्राह्मणों में निर्दिष्ट वेदिनिर्माण की प्रक्रियाओं का पृथिवी की सृष्टि से साम्य दर्शाते हैं । आधुनिक विज्ञान के अनुसार, इस वर्णन में कुछ त्रुटियां हैं । वेद व ब्राह्मण वचनों से वे यह साम्य स्थापित करते हैं, जैसे कि-

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः। (यजुर्वेदः २३।६२)

यह वेदि पृथिवी के पर भाग के अन्त का रूपक है। वैदिक वस्तुओं के आध्यात्मिक अर्थ भी वे प्रदर्शित करते हैं, जैसे गार्हपत्य अग्नि का वीर्याग्नि से साम्य। इसमें भी कई अवैज्ञानिक अंश हैं।

इसी स्थान पर उन्होंने वैदिक सिद्धान्त मीमांसा में अपने विचारों का और अधिक विवरण देने की बात कही है, सो मैंने उस पुस्तक में भी उनका पूरा लेख पढ़ा । लेख है 'श्रौतयज्ञों की मीमांसा' और उसमें उन्होंने श्रौतयज्ञ रूपी द्रव्ययज्ञों को वेदप्रमाणित दर्शाया है, हवि, घृतादि, द्रव्यों का निरूपण किया है, उसके प्रमाण में अनेकों वेदमन्त्रों को उद्धृत किया है। परन्तु अन्त में वे अपने ही मत को पूर्णतया उलटते हुए कोष्ठकों में एक अनुच्छेद जोड़ते हैं - "यह लेख मैंने सन् १९३५ के मध्य में 'दिवाकर' नामक मासिक पत्रिका के वेदांक (अक्टूबर, १९३५) के लिए लिखा था।[१] उस समय तक मैं ब्राह्मणग्रन्थों, श्रौतसूत्र एवं मीमांसा में प्रतिपादित द्रव्यमय श्रौतयज्ञों को आधयात्मिक और आधिदैविक जगत् का रूपक

---

१. यह टिप्पणी कब जोड़ी गई, प्रकृत पुस्तक कब छपी, इसका विवरण मुझे प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु 'लेखकीय वक्तव्य' में १९६५ तक का विवरण प्राप्त होता है, तो लेख से कुछ ३० वर्षोपरान्त यह लिखी गई है।

मानते हुए भी, इन्हीं श्रौतयज्ञों का प्रतिपादन ही वेद में भी मानता था। परन्तु आगे वैदिक वाङ्मय के बार-बार अनुशीलन से मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि वेदमन्त्रों में प्रतिपादित यज्ञ 'सृष्टि-यज्ञ' ही हैं। उन्ही का निदर्शन कराने के लिए ब्राह्मणादिग्रन्थोक्त श्रौतयज्ञों का ऋषियों ने प्रतिपादन किया है । अर्थात् **"द्रव्यमय श्रौतयज्ञ सृष्टियज्ञ के रूपक अथवा व्याख्यान हैं ।"**

अब पण्डित जी का मत परिवर्तन किन कारणों से हुआ, उनका जबकि कुछ संकेत हमें श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय पुस्तक में प्राप्त हो रहा है, तथापि वह पूर्णतया उनके पूर्व मत को खण्डित करने में असफल है। श्रौतयज्ञों की याज्ञिक प्रक्रियाएं अत्यन्त क्लिष्ट होती हैं, और ब्राह्मणादि ग्रन्थ स्वयं उनको सृष्टि की गतिविधियों का प्रतीकरूप में वर्णन करते हैं, जैसे सूर्य व चन्द्र का आकाश में भ्रमण का प्रतीक, आदि। तथापि उनमें यज्ञों से पुण्य ग्रहण करने की वार्ता को भी, ब्राह्मग्रन्थों में ही नहीं, अपितु उपनिषद्, रामायण, महाभारत, आदि, में भी स्पष्टरूप से कहा गया है । यह पुण्य कैसे उत्पन्न होता है, उसको महर्षि दयानन्द ने उपर्युक्तसंवाद में बताया – पर्यावरण के सुधार से, आसपास के सभी प्राणियों को रोगमुक्तकरने से । तब इस विषय को युधिष्ठिर जी ने क्यों त्यागा, इस विषय पर सम्भवत: किसी ने भी आगे कार्य नहीं किया है । मैं तो उनके दृष्टिकोण से सहमत नहीं हूं। मुझे यह सही नहीं लगता कि वर्ष भर चलने वाले कई यज्ञ प्रतीक मात्र थे । प्रतीक मानने पर **"स्वर्गकामो यजेत् पुत्रकामो यजेत"** आदि वचनों का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता ! पण्डित जी ने अपने लेख में स्वयं यज्ञ न करने से हानि बताने वाले अंश उद्धृत किए हैं, जैसे–

अयज्ञियो हतवर्चा भवति ॥ अथर्ववेद: १२।२।३७ ॥

–अर्थात् होम न करने वाले की बुद्धि, शक्ति, तेज आदि वर्चस्व का नाश हो जाता है (वैसे यहां सन्दर्भ मृतक को जलाने वाली अग्नि का है और यह उद्धरण सही नहीं है) । इसमें कुछ भी आधिदैविक अंश नहीं है !

तस्य ब्राह्मणस्यानग्निकस्य नैव दैवं दद्यान्न पित्र्यं न चास्य स्वाध्यायाशिषो न यज्ञ आशिषः स्वर्गङ्गमा भवन्ति ॥ गोपथब्राह्मणम्, पूर्वभागे प्रपाठक: २, कण्डिका २३॥

–अर्थात् जो ब्राह्मण होम नहीं करता, उसके दैव = पूर्वकृत (सु) कर्म व पित्र्य = पैतृक सम्पत्ति (उत्तम फल) नहीं देते, न उसे स्वाध्याय व यज्ञ से प्राप्त आशीर्वाद रूपी फल स्वर्ग पहुंचाने वाले होते हैं । यहां भी कोई आधिदैविक अंश नहीं है !

ये वचन भी तो वेद व ब्राह्मणग्रन्थ के हैं, तो इन्हें युधिष्ठिर जी ने कैसे नकार दिया, मेरी यह समझ के परे है...

अपनी ओर से मैं यज्ञों की सार्थकता को प्रमाणित करने वाले व उनसे पर्यावरण पर प्रभाव दर्शाने वाले कतिपय मन्त्रों को उद्धृत कर रही हूं । आशा है इनसे यज्ञों के केवल प्रतीकात्मक होने की सोच पर विराम लगेगा !

पृथिवि देवयजन्योषधयास्ते मूलं मा हिँसिषं
व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवित: ... ॥ यजुर्वेद: १।२५॥

अर्थात् (महर्षि दयानन्द भाष्य से संक्षेपित) – हे (देव) सूर्यादि जगत् के प्रकाश करने तथा

(सवितः) ऐश्वर्य देने वाले प्रभो ! (ते) आपकी कृपा से मैं (देवयजनि) विद्वानों के यज्ञ करने की स्थान (ते) यह जो (पृथिवी) भूमि है और (ओषध्याः) जो यवादि ओषधियां हैं, उनके (मूलम्) वृद्धि करने वाले मूल (अर्थात् पृथिवी और यज्ञ) को (मा हिँसिषम्) नष्ट न करूं। और मैं (पृथिव्याम्) अनेक सुखों को देनी वाली भूमि पर (यः) जिस यज्ञ का अनुष्ठान करती हूं, वह (व्रजम्) जलवृष्टिकारक मेघ को (गच्छ) प्राप्त हो और (गोष्ठानम्) सूर्य की किरणों के प्रभाव से (वर्षतु) उन वृद्धिकारक याज्ञिक पदार्थों को वह बरसाए और (ते) उस (द्यौः) सूर्य के प्रकाश को (बध्नान) बांध दे (उसके गुणों को पृथिवी पर ले आए)।

यहां यज्ञ से प्राप्त विभिन्न लाभों को स्पष्टतः बताया गया है और आधिदैविक अंश यहां न्यून ही है। महर्षि भावार्थ में तात्पर्य को और भी स्पष्ट करते हैं – "ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वान् मनुष्यों को पृथिवी का राज्य तथा उसी पृथिवी में तीन प्रकार के यज्ञों और ओषधियों, इनका नाश कभी न करना चाहिए। जो यज्ञ अग्नि में हवन किए पदार्थों का धूम मेघ मण्डल को जाकर, शुद्धि के द्वारा, अत्यन्त सुख करने वाला होता है, इससे यह यज्ञ किसी पुरुष को कभी छोड़ने योग्य नहीं है।"

इसी विषय पर एक और सुन्दर मन्त्र है–

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् ।
स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याँ स्वाहा वातादारम्भे स्वाहा ॥ यजुर्वेदः ४।६॥

अर्थात् (हे प्रभो! आपकी आज्ञानुसार) मैं (यज्ञम्) यज्ञ को (मनसः) वेद प्रोक्त विज्ञान की पद्धति से व पूरे मनोयोग से (स्वाहा) कल्याण के लिए, (उरोः) विस्तृत (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष लोक, (द्यावापृथिवीभ्याम्) द्यौ व पृथिवी लोकों, व (वाताद्) वायु की (स्वाहा) शुद्धि व कल्याण के लिए (आरभे) आरम्भ करती हूं।

यहां भी महर्षि का भावार्थ देखने योग्य है – "मनुष्यों के द्वारा जो वेद की रीति और मन-वचन-कर्म से अनुष्ठान किया हुआ यज्ञ है, वह आकाश में रहने वाले वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करके सुखी करता है।" वस्तुतः, यज्ञ से सूर्य की शुद्धि नहीं होती, परन्तु उससे प्राप्त जो गुण हम तक पहुंचते हैं, उनका प्रभाव कल्याणकारी हो जाता है। अन्तरिक्ष, पृथिवी व वायु पर तो यज्ञ का सीधे प्रभाव होता ही है।

अथर्ववेद का १९।५८ सूक्तयज्ञ का शरीर पर प्रभाव वर्णित करता है। मैं यहां उसका केवल प्रथम मन्त्र दे रही हूं –

घृतस्य जूतिः समना सदेवा संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।
श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्त्वच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥
॥ अथर्ववेदः १९।५८।१॥

अर्थात् (समना) यज्ञविधि को जानते हुए, (सदेवा) यज्ञविदों के सम्बन्ध से, (संवत्सरम्) वर्षभर सम्पादित (हविषा) हवि के संग (घृतस्य) घृत (की आहुतियों) का (जूतिः) वेग (संवत्सरम्) वर्षभर (वर्धयन्ती) बढ़ता रहता है। इससे (नः) हमारी (श्रोत्रम्) श्रवणशक्ति, (चक्षुः) चक्षुःसामर्थ्य और (प्राणः) श्वास-प्रश्वास (अच्छिन्नः अस्तु) क्षीण नहीं होते, बने रहते हैं, और हम (आयुषः)

(शेष पृष्ठ १८ पर)

स्वतन्त्रता दिवस की सार्थकता

—पं॰ रामनिवास 'गुणग्राहक' सम्पर्क—(९०७९०३९०८८)

सबसे पहले हम स्वतन्त्र शब्द का अर्थ जान लें। हम अपनी भाषा की दृष्टि से आज भी उतने समर्थ नहीं हो पाये हैं, कि अपने शब्दों के सामान्य अर्थ भी सहज भाव से समझ लें। धार्मिक जगत् में सामन्य शब्दों के भयंकर दुरुपयोग को देखकर महर्षि दयानन्द ने एक छोटा-सा, मगर बहुत उपयोगी ग्रन्थ- **'आर्योद्देश्यरत्नमाला'** लिखा! राजनैतिक क्षेत्र में भी स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र और धर्म-निरपेक्षता आदि कई शब्दों के दुरुपयोग हो ही रहे हैं। स्वतन्त्र शब्द का सीधा-सामान्य अर्थ है—अपना तन्त्र, अपनी व्यवस्था! सभ्यता-संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से भारत विश्व में सर्वोच्च स्थान रखता है। ऋग्वेद को सारा विश्व एक स्वर से प्राचीनतम ग्रन्थ और संस्कृत भाषा को आज भी सबसे अधिक वैज्ञानिक एवं पूर्ण भाषा स्वीकार किया जाता है। क्या यह विकास-वाद का शीर्षासन नहीं है? जो भी हो प्रश्न होता है कि सभ्यता-संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से इतना समृद्ध देश अंग्रेजी शासन से मुक्त होकर अपना तन्त्र, अपनी व्यवस्था बनाकर सच्चे अर्थों मे स्वतन्त्र क्यों नहीं हुआ? हमारे पास चाणक्य, महात्मा विदुर से लेकर शुक्रनीति तक विश्व की श्रेष्ठतम् राजनीति का विश्वकोश था। हमारे पास महर्षि मनु की विश्व स्वीकार्य राज-व्यवस्था थी। हमारे पास वेद जैसी अनमोल धरोहर थी, फिर भी हमने इधर-उधर से टुकड़े बीन-बीन कर अपना ढांचा खड़ा किया हमने तो ऐसे कानून बना दिये, जिनके चलते देश की सभ्यता-संस्कृति और भारतीय ज्ञान-विज्ञान को विद्यालयों में पढ़ाया ही न जा सके। हमने तो ऐसी व्यवस्थाएँ कर दीं कि अल्पसंख्यकों की भाषा व धर्म-संस्कृति को राजकीय धन देकर शिक्षा-संस्थाओं में खूब प्रोत्साहित किया जाए। संविधान की धरा-28-I तथा 30-II, कुछ ऐसी ही घातक व्यवस्था देती हैं। इनके रहते देश को स्वतन्त्र कहना भाषा के साथ न्याय नहीं कहा जा सकता।

स्वतन्त्रता की आधारशिला किसी राष्ट्र की शिक्षानीति होती है। इस बात को समझने के लिए हमें मैकॉले द्वारा ब्रिटिश संसद में दिये गए भाषण का एक अंश पढ़ना और पचाना चाहिए—'मैं भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक सम्पूर्ण देश में घूमा हूँ, किन्तु एक भी व्यक्ति चोर नहीं मिला। सम्पूर्ण देश में सम्पत्ति भरी है, गजब का नैतिक मूल्य सारे देश में पाया जाता है। ऐसी ऊँची प्रतिभा और चरित्र के लोग हैं कि हम उस देश को तब तक जीत नहीं सकते जब तक कि हम उस देश की रीढ़ की हड्डी नहीं तोड़ देते। इस देश की रीढ़ की हड्डी उनकी आध्यात्मिक और नैतिक विरासत है। अतः हमारा प्रस्ताव है कि हम वहाँ की शिक्षा-पद्धति बदल दें। भारतीयों का आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक आत्म सम्मान ही तोड़ दें। जब उनका आत्मिक, नैतिक और संस्कृतिक सम्मन टूट जाएगा, तब हम उन्हें वास्तविक गुलाम बना सकेंगे।

मैकॉले ने जो निष्कर्ष निकाला वह कितना सटीक और सत्य सिद्ध हुआ। शिक्षा-पद्धति के बदलते ही देश में नैतिक मूल्य से शून्य, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आत्म सम्मान से रहित पीढ़ियां पैदा होने लगीं। देश के कर्णधारों ने अंग्रेजों के जाने के बाद भी मैकॉले की

भारतघाती शिक्षा नीति को बनाये रखा इतना ही नहीं हमारी तत्कालीन भारत सरकार को लगातार बीस वर्षों तक देश में शिक्षा मंत्री के रूप में ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो भरतीय धर्म-दर्शन से अनुप्राणित हो! अगर देश की शिक्षानीति का ही भारतीयकरण कर दिया होता तो अपने तन्त्र की मांग उठाने वाली पीढ़ी तैयार हो चुकी होती और आज देश के विश्वविद्यालयों में **'भारत तेरे टुकड़े होंगे'** जैसे नारे सुनने नहीं पड़ते! आज मोदी सरकार शिक्षानीति के भारतीयकरण की दिशा में कदम उठा रही है, अगर ये कदम सफल हुए तो शिक्षा के भारतीयकरण से सच्ची स्वतन्त्रता का द्वार खुल सकता है।

देश को स्वतन्त्रता के लिए जिन क्रान्तिवीरों ने अपना जीवन वार दिया, आज के भारत को उनके सपनों का भारत तो किसी दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। हम अगर सुभाष चन्द्र बोस, भगतसिंह, राम प्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद जैसे वीर बलिदानियों के कार्यों-विचारों पर दृष्टि डालें तो पता लगता है कि वे वीर होने के साथ-साथ महान् विचारक भी थे। वीर सावरकर बाल लिखा साहित्य उनकी बौद्धिक प्रतिभा का ज्वलन्त प्रमाण है। आज आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जनमानस देश की सच्ची स्वतन्त्रता का मूल्य समझे और अपना तन्त्र, अपनी व्यवस्था बनाने और उसे आत्मसात करने-कराने का सफल अभियान चलाये। इसके लिए भाषा और शिक्षा का भारतीयकरण पहला कर्तव्य है। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि हमारे पास शिक्षा और संस्कारों की ऐसी अनमोल विरासत है, जिसे एक दृष्टि भर देख लेने वाले अपने जीवन को धन्य मानने लगते हैं। भारतीय परम्परा में शिक्षा क्या है–"जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियता आदि की वृद्धि होवे और अविद्या आदि दोष छूटें, उसको शिक्षा कहते हैं।" शिक्षा में विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता व जितेन्द्रियता आदि गुणों की वृद्धि होने की बात कही है, इन श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न तथा देश की नई पीढ़ी में इन्हें सम्प्रेषित करने की कला में निपुण पुरुष ही शिक्षक होने योग्य है। इसीलिए प्राचीन काल में शिक्षक को आचार्य कहा जाता था। आचार्य वह होता है, जिसका आचरण-व्यवहार भी ग्रहण करने योग्य हो।

स्वतन्त्रता की स्वार्थकता के लिए शिक्षा की अनिवार्यता को अप्रासंगिक मानने वाले भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के सर्वाधिक सफल रणनीतिकार माने जाने वाले मैकॉले के उस वक्तव्य को एक बार पुनः पढ़ लें, जो लेख के प्रारम्भ में उद्धृत किया गया है। पराधीनता के लिए भारत की शिक्षानीति को नष्ट करना आवश्यक था, और वो ऐसा करके सफल भी हुए तो हमारे लिए यह प्रामाणिक हो जाता है कि सच्ची स्वाधीनता के लिए उसी प्राचीन शिक्षा-पद्धति को पुनर्जीवित किया जाए, जिसके चलते देश में उसी ऊंची प्रतिभा और चरित्र के लोग देश में उत्पन्न हों, जिन्हें संसार की कोई शक्ति परतन्त्र न कर सके। यह शिक्षा-पद्धति तो हमारा आध्यात्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक आत्मसम्मान तोड़ देने की कुटिल भावना से प्रचलित की गई थी। इसके चलते हम उस आत्मसम्मान की पुनः प्रतिष्ठा नहीं कर सकते। उस आत्मसम्मान के बिना स्वतन्त्रता मन बहलाने वाले खिलौने से अधिक कुछ नहीं। यह स्वतन्त्रता मैकॉले के मानस पुत्रों के लिए ही सन्तोष जनक हो सकती है, जो भारत की सत्य सनातन संस्कृति के शाश्वत सिद्धान्तों के उपासक हैं, वे आज भी सच्ची स्वतन्त्रता के स्वप्न को साकार करने के लिए छटपटा रहे हैं।

स्वयं को सभ्य-सुसंस्कृत कहने वाले अंग्रेजों की अमानवीय सोच और कुटिलता तो देखिये कि उन्हें हम भारतीयों के सदाचार, ऊँची प्रतिभा और चरित्र से लेकर हमारे राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ की

हड्डी जो हमारी आध्यात्मिक और नैतिक विरासत थी, उसमें उनकी कोई रुचि नहीं। ऐसे उदात्त गुणों को स्वीकार कर अपने राष्ट्रीय जीवन में नैतिक मूल्यों और ऊँची प्रतिभा व चरित्र के लोग उत्पन्न करने के बारे में न तो मैकॉले ने कोई रुचि दिखाई और न ब्रिटेन की संसद के किसी सदस्य ने। वे जानते थे कि ऐसे महान् लोग हमारी शिक्षानीति की देन हैं, फिर भी उन्होंने उस शिक्षा नीति को स्वीकार कर अपनी मानवता का परिचय न दिया। अगर वो मानवीय गुणों से काम लेकर हमारी शिक्षानीति को स्वीकारते तो इंग्लैंण्ड में भी ऐसे ही चरित्रवान और ऊँची प्रतिभा के लोगों का निर्माण होता और वे अपने यहां ही धन-सम्पत्ति को प्राप्त कर लेते । उन्होंने दानवता से काम लिया, उस शिक्षानीति को इसलिए नष्ट करने का राष्ट्रीय अपराध किया, ताकि वे हमारी सम्पत्ति को लूटते रहने के लिए भारत को गुलाम बना सकें। कितना अच्छा होता यदि ब्रिटेन के पास सद्‌बुद्धि होती, धन लोलुपता के स्थान पर गुण-ग्राहकता होती और वे हमारी ऊँची प्रतिभा और चरित्र के धनी पुरुष पैदा करने वाली शिक्षा नीति को स्वीकार करते ! ऐसी मलिन मनोवृति वाले इंग्लैण्ड को शिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत कौन बुद्धिमान कह पायेगा ?

मैकॉले का भारतीयों के बारे में जो आकलन था वो बड़ा सटीक था। भारत में कितनी ऊँची प्रतिभा और कैसे महान चरित्र के लोग थे, इसका एक ऐतिहासिक प्रमाण देखिये और तुलना करिये भारत और इंग्लैण्ड के राजनैतिक पण्डितों की। चाणक्य भारत की राजनीतिक का चमकता नक्षत्र हैं । दूसरे राष्ट्र को लेकर चाणक्य का चिन्तन कितना मानवीय है, इसके दर्शन उनके निम्न श्लोक में मिलते हैं–

चरित्रं अकृतं धर्म्यं, कृतं च अन्यैः प्रवर्तयेत् ।

प्रवर्तयेत् न च अधर्म्यं, कृतं च अन्यैः निवर्तयेत् ॥

अर्थात् जिस देश को जीत लिया जाए उसमें न होने वाले धर्म कार्यों को प्रवृत्त करावे। जो पहले भी चलने वाले धर्म कार्य हों, उन्हें बढ़ावे। किसी अधार्मिक अनुचित अकल्याणकारी कार्य को स्वयं कभी न चलावे, पहले से यदि कुछ अधार्मिक कार्य हो रहे हों तो उन्हें निवृत्त करे अर्थात् बन्द कर देवे। सुधी पाठक! स्वयं निर्णय करें कि भारतीय सनातन संस्कृति के संस्कारों से सजी-संवरी शिक्षा- नीति चाणक्य जैसे मानवतावादी व्यक्तित्व का निर्माण करती है। स्वयं को सभ्य, सुसंस्कृत कहलाने वाले अंग्रेज ऐसी महान संस्कृति की संवाहक शिक्षा-पद्धति को नष्ट करने का अमानवीय पाप भारत की सम्पत्ति को लूटते रहने के लिए करते हैं ! ऐसी क्रूर-कुटिल मनोवृत्ति वाले अंग्रेजों की राजनैतिक बेड़ियों को तोड़ डालने वाले वीर बलिदानियों के वंशजो ! हमारी सांस्कृतिक विरासत को नष्ट करने वाली, मानसिक दास बनाने वाली मैकॉले की शिक्षानीति को समाप्त करके सच्ची स्वतन्त्रता का सुखद सवेरा लाने वाली शिक्षानीति के शुभागमन के लिए संघर्ष करो ! ❑❑

इन्द्रियों की अपेक्षा मन श्रेष्ठ है, मन की अपेक्षा बुद्धि अधिक श्रेष्ठ है, बुद्धि की अपेक्षा आत्मा और अधिक श्रेष्ठ है ।
–गीता

जो धर्म को जानने की इच्छा करें, उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है।

बेटे की चाहतः अंधविश्वास, अपराध और कारोबार

–राजीव चौधरी (मो०–९५४००२९०४४)

दो छोटी-छोटी मासूम सी गुडिया जुड़वाँ पैदा हुई थीं। 21 दिन की थी उनका पिता उन बच्चियों को ननिहाल से अपने घर ले आया। बच्चियों की मां तो मायके में थी। वो नहीं जानती थी कि उसका पति दोनों बेटियों के साथ क्या करने ले गया है। हैवान बने पिता ने बच्चियों को दो दिन तक पीने के लिए दूध की एक बूंद तक नहीं दी तो उनकी मौत हो गई। फिर उसने पत्नी को बिना बताए बच्चियों को दफना दिया। मामला देश की राजधानी दिल्ली के सुल्तानपुरी स्थित पूंठ कलां गांव का है।

ये आज़ के भारत की कहानी है, उस भारत की जहाँ कन्या को देवी रूपा समझा जाता है। लेकिन लालसा बेटा पैदा होने की रहती है। यह लालसा कदम-कदम पर हत्या, अपराध और शोषण तक को जन्म देती रहती है। कुछ समय पहले अलीगढ़ में बेटे की चाहत में एक महिला तांत्रिक के पास गई। उसे लगा कि किसी तन्त्र-मन्त्र से बेटा नसीब हो जाये। तांत्रिक ने महिला का जमकर यौन शोषण किया। उसकी अस्मत से लेकर घर का रुपया पैसा सब कुछ जमकर लूटा।

ऐसे ही उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ में एक पढ़े लिखे यहाँ तक कि डॉक्टर पिता ने अपनी 15 दिन की बेटी को जान से मार दिया। हैरान करने वाली बात यह है कि डॉक्टर ने तंत्र-मंत्र और जादू टोना की वजह से नवजात की जान ले ली। किसी ने डॉक्टर को बताया था कि तंत्र-मंत्र के जरिए बेटे की कमी को पूरा किया जा सकता है लेकिन पहले अपनी बेटी की हत्या करनी पड़ेगी।

ऐसे ही यू॰ पी॰ के दादरी में बेटे की चाहत में 3 बेटियों की मां एक तांत्रिक के चंगुल में फंस गई। ये तांत्रिक भी महिला का लगातार शोषण करता रहा। इतना ही नहीं उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले में बेटे की चाहत ने एक परिवार को हैवान बना दिया कि तांत्रिक के कहने पर परिवार ने पड़ोसी की ही 22 माह की बच्ची की बली दे दी।

मामले यहाँ तक नहीं रुकते, बिहार के बक्सर से तो एक बाप अपनी सगी बेटियों से 10 सालों तक रेप करता रहा है। क्योंकि आरोपी पिता तांत्रिक के बहकावे में आकर अपनी बेटियों को अपने हवस का शिकार बना रहा था। वहीं पीड़िता की मां और चाची भी इस गुनाह में शामिल थीं।

घटनाएँ केवल उत्तर भारत तक सीमित नहीं है बल्कि कुछ समय पहले कर्नाटक में चिबल्लापुरा जिले के एक गांव में बेटा नहीं होने से दुखी एक महिला ने अपनी तीन नाबालिग बेटियों के साथ कथित रूप से कूएं में कूद कर खुदकुशी कर ली। 25 वर्षीय नागाश्री ने अपनी तीन बेटियों नव्याश्री, दिव्याश्री और दो महीने की एक बेटी के साथ अपनी जान दे दी थी। नागाश्री पर बेटा पैदा करने का पारिवारिक दबाव था और बेटे को जन्म नहीं देने की वजह से वह दुखी रहती थी।

ऐसे एक नहीं हजार अपराध हैं और इन सभी अपराधों की एक जड़ है अन्धविश्वास। कई बार इन्सान भले ही अंधविश्वास से बचना भी चाहे लेकिन हमारे इर्द-गिर्द जमा समाज उसकी ओर धकेल ही देता है। दो जुड़वाँ 21 दिन की बच्चियों की हत्या का मामला भले ही पुलिस के लिए केस, उनकी माँ लिए के विपदा और अखबारों

के लिए एक खबर हो, लेकिन 21 वीं सदी के भारतीय समाज के मुंह पर तमाचा है।

ये सभी चीजें एक ही सवाल छोड़ती नजर आती हैं जो हमेशा से समाज के गले में डाला गया है कि 'बेटे के हाथों पिंडदान न हो तो मोक्ष नहीं मिलता। जब तक चिता को बेटा मुखाग्नि नहीं देता, आत्मा को मुक्ति नहीं मिलती। अंधविश्वास की नगरी में पितरों का उद्धार करने के लिए मोक्ष के लिए पुत्र की अनिवार्यता मानी गई है। ऐसी मान्यता है कि पुत्र के हाथों पिंडदान होने से ही प्राणी मोक्ष को प्राप्त करता है। इस वजह से हमारे समाज में एक धारणा बनी हुई है कि जिसके बेटा नहीं होता उसे अभागा तक समझा जाता है।

पिछले कुछ सालों में भले ही कानून के डंडे के डर से "शर्तिया लड़का ही होगा" वाले हकीम भूमिगत होकर अपना व्यापार चला रहे हों लेकिन पांच-सात साल पहले तक सड़कों के आसपास दीवारों, चौराहों, खेतों में बने ट्यूबवेल के कमरों, आदि पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा होता था "शर्तिया लड़का ही होगा"। ये व्यापार अभी पूर्णतया बंद नहीं हुआ। अभी भी लड़का पैदा करने के कई नुस्खे भी काम में लिए जाने लगे हैं। शातिर लोग तो इस चीज के विशेषज्ञ बने बैठे हैं और बड़े-बड़े पढ़े लिखे लोग लड़के की चाहत में इनकी सेवाएं लेने से नहीं चूकते।

इनका खेल केवल संभावना के सिद्धांत के आधार पर चलता है। जब इनकी दवा के प्रयोग के बाद लड़का पैदा हो जाता है तो यह उसे एक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। मोटी रकम वसूल करते हैं और जब परिणाम विपरीत आता है तो दवा के प्रयोग करने में गलती होना बताकर या उसकी किस्मत खराब बताकर सारा दोष प्रयोग करने वाली महिला का बता देते हैं। जब सब प्रयासों के बाद भी लड़का पैदा नहीं होता तो महिला अपने आपको कोसती है और कई बार तो कुछ कर्नाटक की नागाश्री जैसे भी कदम उठा देती है तो कुछ बंगाली बाबाओं, तांत्रिकों के चंगुल में फंसकर रह जाती है।

आप किसी से भी पूछिए कि आखिर लड़का होना क्यों जरूरी है? तो इस प्रश्न के ये जबाब कुछ यूँ मिलेंगे कि साहब लड़के से ही वंश चलता है, लड़का बुढ़ापे का सहारा होता है, लड़की तो पराई होती है आदि-आदि रटे रटाये जवाब मिलते हैं। जबकि हमने वो परिवार भी देखें है जहाँ लड़के की चाहत में 6 लड़कियां पैदा की बाद में एक लड़का हुआ लेकिन वह लड़का आज नशे, चोरी आदि में लिप्त है। और उन बूढ़े माँ-बाप की देखभाल वो बेटीयाँ ही कर रही हैं।

किसके यहाँ लड़का पैदा होगा और किसके यहाँ लड़की, इसका निर्धारण हमारे वश में नहीं है। न ही इस बात की कोई गारन्टी है कि जिसके यहाँ बेटा है उसकी जिंदगी सुखी है और बेटी वाला दुखी है। जो चीज हमारे वश में न हो उसके लिए कभी विचार नहीं करना चाहिए और जो प्रकृति से हमें मिला है उसका उपकार मानना चाहिए।

इस देश में पिछले 50-60 सालों में उच्च वर्ग से लेकर मध्य वर्ग के व्यक्तियों ने लाखों लड़कियों को जन्म से पहले ही मार दिया, यह आंकड़ा बहुत ही न्यूनतम बताया है। अगर सही आंकड़ा का पता चल गया तो ऐसे उछलोगे कि सिर छत से जा टकराएगा, इतना तो तब है जब स्त्री के गर्भ में पल रहे बच्चे के भ्रूण की जाँच कराना दंडनीय अपराध है, इस किस्म के अल्ट्रा-साउंड पर बैन है, मगर बताया जाता है कि अभी भी चोरी छिपे सब चलता है। इस देश में, कई बार खूब छापेमारी की खबरें भी आई हैं ऐसी लैब्स की, जो भ्रूण की जाँच में संलिप्त पाई गईं, बोर्ड सबने लगाया हुआ है, हम भ्रूण की जाँच नहीं करते लेकिन चोरी छिपे करते तो हैं।

हर किसी को पुत्र चाहिए और पुत्री नहीं।

आखिर हैं तो दोनों एक ही माता-पिता की संतान। पर यह समझाया जाता है कि बेटे पर अपने उन पितरों का ऋण है जो उसे इस दुनिया में लाए थे। यह भी कि यह ऋण उतारना उसकी नैतिक जिम्मेदारी है, वरना उस के पूर्वजों की अतृप्त आत्माएं भटकती रहेंगी। मगर पुत्र ही क्यों? पुत्री भी तो इन्हीं पूर्वजों द्वारा संसार में लाई गई हैं? तो पितृ ऋण तो उस पर भी होना चाहिए? अंधविश्वास ने मृत्यु के बाद का एक काल्पनिक संसार रच दिया है। जबकि इस देश में बहुतेरे ऋषि, मुनि, धर्म ज्ञाता ऐसे भी हुए हैं जिनको संतान नहीं थी जो आजीवन ब्रह्मचारी रहे क्या वे सब मोक्ष के अधिकारी नहीं थे?

लेकिन फिर भी पुत्र पैदा करने के लिए मानसिक दबाव बनाया जाता है। जिस कारण कोई महिला तांत्रिकों की हवस शिकार बनती है तो कोई बेटियों की हत्या कर रहा है। कोई बली दे रहा है, शर्तिया बेटा ही पैदा होगा हजारों करोड़ का अंधविश्वास का बाजार खड़ा हो गया है, मुल्ला मौलवी तांत्रिक ओझा बाबा पीर फकीर मजार सब लड़का पैदा करने के दावे कर रहे हैं। क्योंकि जब समाज में अंधविश्वास पैदा हो जाये हर कोई उससे अपनी पूर्ति करना चाहता है। आज दो मासूम बेटियों को उसके बाप ने कत्ल किया कल कोई दूसरा इस अपराध को अंजाम देता दिखाई देगा। ❑❑

(पृष्ठ ५ का शेष) हाथरस कांड का असल दोषी कौन बाबा या अंधविश्वास ?

कालिख पोतने का काम किया है। अपनी अनुयायी स्त्रियों के शारीरिक शोषण, हत्या-अपहरण से लेकर अन्य जघन्य अपराध करने वाले बाबाओं का प्रभाव इस कदर बढ़ता जा रहा है कि आज जनता को तो छोड़िये, सदिच्छाओं वाले राजनेता, अभिनेता, अधिकारी, बुद्धिजीवी इत्यादि वर्ग भी उनसे घबराने लगा है।

जब कानून इन बाबाओं पर शिकंजा कसता है, तो उनके भक्त कानून-व्यवस्था के लिए चुनौती बन जाते हैं। लोग इनके लिए हत्या-हिंसा तक करने पर उतारू हो जाते हैं। अफसोस की बात ये है कि आम भारतीय को जीने के लिए ईश्वर की नहीं अब बाबाओं की खुराक चाहिए। ऐसा लगता है कि बाबाओं और सियासत के तमाशे को देखकर खुशी हासिल करते हैं।

आम लोग अक्सर कहते हैं कि ईश्वर उनकी प्रार्थना सुनता नहीं। जबकि क्या वो बता सकते हैं कि क्या उन्होंने ईश्वर पर कभी विश्वास किया? विश्वास तो करते हैं बाबाओं पर मजारों पर पीरों पर चढ़ावा चढाने से लेकर ताबीज गंडे पर और दोष देते हैं ईश्वर को? शायद यही अंधविश्वास देश में बाबाओं की बड़ी फौज खड़ी करता चला जाएगा। क्योंकि बाबा राजनीति से खुराक ले रहे हैं और राजनीति बाबाओं से। आम जनता इसे धर्म समझकर परम्परा समझकर इसमें धंसकर फंसती चली जा रही है। इस कारण देश के हर एक जिले में एक ना एक बाबा खड़ा होता चला जा रहा है। आम हिन्दू ना घर में गीता रखता ना वेद। बस बाबाओं के फोटो लगाता है और उनके सामने दिया बाती करता है। वो बाबाओं को भगवान बनाने पर तुला है और बाबा अपना साम्राज्य खड़ा कर रहे हैं।

आर्यसमाज की ओर से हाथरस की दुखद घटना पर संवेदनाएं। ईश्वर उनकी भी आत्मा को शांति प्रदान करें जो ईश्वर के बजाय बाबाओं पर विश्वास करते हैं।

इन अंधविश्वासों से बचने का एक ही समाधान है और वो है **"आर्यसमाज"**। ❑❑

॥ ओ३म् ॥

छोटी-छोटी पर बड़ी बातें – ४

–राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९९१२९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! प्रा० श्री राजेन्द्र जिज्ञासु जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी का एक प्रेरक प्रसंग लिखा है–बाढ़ की हानि को देखते हुए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कुछ कर्णधार गुरुकुल कांगड़ी को पुरानी भूमि से इधर लाना चाहते थे, पर स्वामी जी वहीं रखने के पक्ष में थे। बलिदान (23 दिसम्बर 1926) से 4 मास पूर्व गुरुकुल के पुराने स्नातक श्री जनमेजय विद्यालंकार ने स्वामी जी से कहा–'आचार्य रामदेव, पं० विश्वम्भरनाथ तथा महाशय कृष्ण ये तीनों ही गुरुकुल को इस पार लाना चाहते हैं। इन तीनों महानुभावों को आर्य प्रतिनिधि सभा से निष्कासित कर देना चाहिये। इनको सभा से निकालना क्या कठिन कार्य है। जनता हमारे साथ है।

जवानी के जोश में जनमेजय जी ने ऐसा कह दिया। इसी प्रकार की बात कई अन्य स्नातकों ने भी श्री स्वामी जी से कही। तब स्वामी जी ने बहुत दृढ़ता तथा गम्भीरता से कहा–"अरे भाई यह निकालने की प्रथा बन्द करो, आर्यसमाज के पास कार्यकर्त्ता हैं ही नहीं। जो कुछ इने-गिने हैं भी, उन्हें भी बाहर निकाल दोगे तो काम कैसे चलेगा? गुरुकुल को ये लोग जहाँ ले जाना चाहते हैं वहाँ ले जाने दो, कोई चिन्ता की बात नहीं है। अब गुरुकुल इतना बड़ा हो गया है कि स्थान परिवर्तन से भी इसका कुछ अहित नहीं हो सकता। ये लोग गुरुकुल की सेवा ही तो कर रहे हैं। इनके उत्साह में विघ्न मत डालो।"

दिल्ली के आर्य महासम्मेलन (2012) में 'समाज में संगठन' विषय पर पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी (सांसद) ने कहा था–यह ठीक है कि गाड़ी में इंजन, तेल-टंकी, स्टेरिंग आदि मुख्य होते हैं, पर याद रखना पहिये में हवा भरने वाली छोटी सी वाल के बिना भी गाड़ी नहीं चल सकती। अतः समाज के छोटे से छोटे कार्यकर्त्ता को भी सामान दो, नहीं तो बार-बार झिड़की खाया हुआ कुत्ता भी घर का द्वार छोड़कर चला जाता है।

ब्रह्मचारी अरुण कुमार आर्यवीर ने पूज्य आचार्य श्री ज्ञानेश्वरार्य के विषय में बड़ा मार्मिक संस्मरण लिखा है–अभी कुछ वर्षों पूर्व वैदिक आध्यात्मिक न्यास की एक दिवसीय बैठक में भाग लेने रोजड़ पहुँचा ही था कि मुझे उदर विष बाधा के कारण उल्टियां होनी शुरू हुई। स्थिति इतनी गंभीर हुई कि रुग्ण वाहिका (एम्बुलेंस) बुलाकर चिकित्सालय भेजना पड़ा। महज आठ घंटों के अंतराल में तीन-तीन अस्पताल परिवर्तन कर सीधे गहन चिकित्सा कक्ष में भर्ती किया गया। उस दिन सायं आचार्य (श्रीज्ञानेश्वराय) जी को विदेश यात्रा हेतु उड़ान भरनी थी, जाते जाते 50 सहस्र रु० मेरे इलाज के लिए देकर निम्न वाक्य कहे थे–"जितना भी धन व्यय हो मैं दूंगा, यह ब्रह्मचारी बचना चाहिए धन मुझे फिर भी मिल जायेगा, ऐसा व्यक्ति फिर कहाँ से लाऊंगा ?"

स्वामी श्रद्धानन्द के कथन की पुनरावृत्ति सी होती दिखाई दी, पूज्य स्वामी सत्यपति जी के जीवन में। श्री रामचन्द्र आर्य (सोनीपत) ने अपने संस्मरण में लिखा है–स्वामी जी जहाँ भी प्रचार हेतु जाते थे, सर्वत्र अपने प्रवचनों के साथ यह कहना नहीं भूलते थे कि तीन स्थानों पर हमारे

विद्यालय चल रहे हैं- रोजड़ गुजरात, ऋषि उद्यान अजमेर और सुन्दरपुर कुटिया रोहतक में, आप उनका सहयोग कीजिए ।

सुन्दरपुर कुटिया में गुरुकुल चलाते हुए जब सत्यव्रत जी को रोहतक और आसपास से पर्याप्त सहयोग प्राप्त होने लगा तो उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि स्वामी सत्यपति जी से हमारा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जब मैं (रामचन्द्र आर्य) ने स्वामी जी को यह बात बताई तो स्वामी जी पर इसका कोई विपरीत प्रभाव होता दिखाई नहीं दिया। स्वामी जी ने केवल इतना कहा कोई बात नहीं। वह विद्यालय तो चला रहे हैं ना !"

समाज में कुछ स्वार्थी व्यक्ति महापुरुषों के विषय में स्वार्थ व ईर्ष्यावश असत्य बातों का दुष्प्रचार कर देते हैं और उसी के आधर पर भोले व अज्ञानी लोग अपनी धरणा बना लेते हैं। फिर उनका व्यवहार भी बदल जाता है। यह दुष्प्रवृति समाज व संगठन के लिए विनाशकारी सिद्ध होती है। ऋषि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी दर्शनानन्द आदि का जीवन ऐसी दुर्घटनाओं से भरा पड़ा है।

इसी तरह एक बार स्वामी सत्यपतिजी ऋषि उद्यान (अजमेर) में गये, तो उन्हें देखकर एक व्यक्ति चिल्ला कर बोलने लगा यह पाखण्डी यहाँ आ गया है। योग के नाम से ढोंग करता है....।" यह सुनकर स्वामी जी बिल्कुल मौन रहे। कुछ देर बोलकर वह व्यक्ति चला गया। स्वामी जी कहते थे आपको कोई गलत कहता है तो आप स्पष्टीकरण तब करो जब वह सुनने को तैयार हो, अन्यथा चुप रहो। दूसरे लोग आपको ठीक जानते हैं, आपका वास्तविक आचरण ठीक है, तो लोग अवश्य ठीक समझेंगे। श्रेष्ठ आचरण करो, कहने की आवश्यकता नहीं है।

श्री सोमेश पाठक ने गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य रामदेवजी के विषय में एक घटना लिखी है - तब आर्यसमाज में दो दल थे - एक लाला हंसराज का कल्चर्ड दल व दूसरा लाला मुंशीराम का महात्मा दल। दोनों में बहुत मतभेद चल रहा था। रामदेव लाला हंसराज के चचेरे (मौसेरे) भाई थे और डी.ए.वी. स्कूल लाहौर में पढ़ रहे थे। अत: स्वाभाविक रूप से उनका झुकाव कल्चर्ड दल की तरफ था।

जब रामदेव का विवाह हुआ, तो उनकी अवस्था मात्र 13 वर्ष थी। यह विवाह जालन्धर कन्या विद्यालय की छात्रा विद्यावती से हुआ था (1894 ई०)। कन्या विद्यालय के संचालक लाला देवराज व लाला मुंशीराम भी कन्या पक्ष की ओर से विवाह में सम्मिलित हुए। युवक रामदेव ने आकर्षक व्यक्तित्व के धनी लाला मुंशीराम को पहली बार देखा था। किसी ने उन्हें बताया कि ये महात्मा दल के लीडर लाला मुंशीराम हैं, तो यह सुनते ही जोशीले युवक रोमदेव ने कहा-" अच्छा, तो आर्यसमाज के सब झगड़ों की जड़ यही हैं ।"

बाद में, जब सत्य जाना, तो आर्य युवक रामदेव महात्मा दल की तरफ झुके और महात्मा मुंशीराम के प्रति समर्पित होकर गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य बने। स्वामी श्रद्धानन्द के कार्य को कुशलता पूर्वक आगे बढ़ाया। ❑❑

- **स्वर्ग, नरक**–स्वर्ग या नरक नाम के कोई विशेष स्थान नहीं हैं, अपितु सुख विशेष का नाम स्वर्ग और दु:ख विशेष का नाम नरक है।
- वचन रूपी जो बाण मुख से निकलते हैं, उन बाणों द्वारा घायल व्यक्ति रात दिन सोच करता है। वे बाण केवल मर्मस्स्थल में चोट पहुँचाने वाले होते हैं, किसी दूसरी जगह चोट नहीं पहुँचाते। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति कभी भी कटु वचनों का किसी के प्रति व्यवहार नहीं किया करते। *–विदुरनीति*

तप, तीर्थ !

तप—

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः।
(तैत्तिरीयोपनिषद्)

अर्थात् यथार्थ शुद्धभाव रखना, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को बुराइयों की ओर न जाने देना, शरीर, इन्द्रियों और मन से शुभ कामों का करना, वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कार्यों का नाम तप है । धूनी लगाके सेकने का नाम तप नहीं है ।

बहुत से लोग तप के नाम पर अकारण ही अपने शरीर को अनेक कष्ट देते हैं। गर्म चिमटे से अपेन शरीर को दागते हैं। महीनों खड़े रहते हैं जिससे उनकी टांगों में खून उतर आता है और सूज कर बहुत कष्ट देती हैं। शीतकाल में सिर पर सैकड़ों घड़े पानी डलवाते हैं। सिर के बालों को कैंची से काटने के बजाय हाथ से नोचते हैं इत्यादि। ये सब क्रियाएं तप नहीं हैं। अपितु पाप और हिंसा हैं, बहकावा और छलावा हैं।

तीर्थ—वेद आदि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, माता, पिता आचार्य, अतिथि की सेवा करना, परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, जितेन्द्रियता, सुशीलता, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभ गुण और कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं।

"जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। ❑❑

(पृष्ठ ९ का शेष) **यज्ञ केवल रूपक हैं या कुछ और भी ?**

आयु से व (वर्चसः) तेज से (अच्छिन्नाः) वियुक्त नहीं होते ।

इस प्रकार, यज्ञ से हमें सीधे-सीधे भी शरीर व इन्द्रियों की दृढ़ता प्राप्त होती है। मैंने कुछ लोगों से सुना है कि जब से वे नित्य दो बार हवन करने लगे, तब से उनका वैद्य के पास जाना बन्द हो गया, और इस प्रकार वे २५ वर्ष से निरोगी थे!

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि महर्षि दयानन्द ने क्यों यज्ञ पर इतना बल दिया है । प्राचीन भारत में जो रोगों का अत्यन्त अभाव था, विशेषकर जब हम भूगोल के अन्य समकालिक देशों से तुलना करते हैं, तो उसमें, योग और आयुर्वेद के साथ-साथ, यज्ञ को भी श्रेय देना पड़ेगा। इन कारणों से मुझे युधिष्ठिर जी का यज्ञों की केवल प्रतीकात्मकता होने का मन्तव्य हेय प्रतीत होता है । प्रतीकात्मकता तो है, परन्तु वह यज्ञों का एक बहुत छोटा अंश है, ऐसी मेरी मान्यता है। उसके भुला देने पर भी, यज्ञ की सार्थकता बनी रहती है और वह कर्तव्य कर्म बना रहता है। ❑❑

अपूर्व विद्वत्ता

कर्णवास में अनूपशहर के पं० हीरावल्लभ जी अपने कतिपय साथियों के साथ स्वामी जी के पास आये और शास्त्रर्थ के लिए सभा संगठित हुई। पं० हीरावल्लभ ने बीच में ठाकुर जी का सिंहासन रख दिया, जिस पर शालिग्राम आदि की मूर्तियाँ थीं और प्रतिज्ञा की कि स्वामी जी से इन्हें भोग लगवाकर उठूंगा। छः दिन तक बराबर धाराप्रवाह संस्कृत में शास्त्रर्थ होता रहा। सातवें दिन हीरावल्लभ जी ने प्रकट कर दिया कि जो कुछ स्वामी जी कहते हैं, वही ठीक है और सिंहासन से मूर्तियों को उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया और सिंहासन पर वेद की स्थापना की ।

॥ ओ३म् ॥

अद्वितीय महापुरुष योगेश्वर कृष्ण जिनका जीवन अनुकरणीय है

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : ०९४१२९८५१२१)

मनुष्य का जन्म आत्मा की उन्नति के लिये होता है। आत्मा की उन्नति में गौण रूप से शारीरिक उन्नति भी सम्मिलित है। यदि शरीर पुष्ट और बलवान न हो तो आत्मा की उन्नति नहीं हो सकती। आत्मा के अन्त:करण में मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार यह चार अवयव व उपकरण होते हैं। इनकी उन्नति भी आत्मा की उन्नति के लिये आवश्यक है। समस्त वैदिक साहित्य का अध्ययन करने पर निष्कर्ष निकलता है कि वेदज्ञान से मनुष्य ईश्वर, आत्मा व सांसारिक ज्ञान को प्राप्त होकर तथा तदनुकूल आचरण करने से उसकी शारीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति होती है। श्री कृष्ण जी सच्चे वेदानुयायी एवं ईश्वरभक्त थे। वह सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञ नहीं थे अपितु माता-पिता से जन्म होने तथा शरीर छोड़ने के कारण वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार उनका श्रेष्ठ व ऋषियों के समान जीवात्मा होना ही निश्चित होता है। श्री कृष्ण का जीवन संसार के सभी लोगों के लिये प्रेरणादायक एवं अनुकरणीय है। उनके जीवन, कार्यों एवं शिक्षाओं का अध्ययन करने एवं उनके अनुरूप स्वयं को बनाने से मनुष्य जीवन सहित देश व समाज की रक्षा, उन्नति व उत्कर्ष हो सकता है। महाभारत के बाद श्री कृष्ण जी से मिलते जुलते गुणों वाले कुछ अन्य महापुरुष हुए हैं जिनमें हम आचार्य शंकर, आचार्य चाणक्य एवं ऋषि दयानन्द को सम्मिलित कर सकते हैं। यह तीनों महापुरुष भी ईश्वर भक्त, वेद भक्त, योगी तथा आदर्श देशभक्ति व उसके लिये बलिदान की भावना से सराबोर थे। योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने अपने काल में अधर्म, अन्याय तथा अविद्या के विरुद्ध आन्दोलन किया था। आचार्य शंकर ने अपने समय में नास्तिकता को समाप्त करने सहित उसके प्रसार को रोककर वेद व वेदान्त की शिक्षाओं को कुछ वेद विपरीत मान्यताओं सहित स्थापित किया था। आचार्य चाणक्य एवं ऋषि दयानन्द ने भी अपने अपने समय में देश व धर्म रक्षा के महत्वपूर्ण कार्यों को किया। वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा व इसका संवर्धन तभी हो सकता है कि जब हम इन सभी महापुरुषों सहित मर्यादा पुरुषोत्तम राम तथा अपने समस्त ऋषियों मुनियों व वेद एवं धर्म प्रेमी सत्पुरुषों की बतायी शिक्षाओं एवं सद्गुणों का अनुकरण करें। हमें यह भी धयान रखना है कि हमें वेदानुकूल मान्यताओं एवं शिक्षाओं से युक्त वैदिक ज्ञान को ही ग्रहण करना है और वेदविरुद्ध मान्यताओं का तिरस्कार करना है भले ही वह किसी महापुरुष या ऋषि तुल्य किसी व्यक्ति ने ही कही हो ।

योगेश्वर कृष्ण जी का बड़ी विषम पारिवारिक एवं देश की राजनैतिक परिस्थितियों में जन्म हुआ था। उनके मामा कंस ने उनके माता-पिता देवकी और वसुदेव जी को अकारण ही जेल में डाल दिया था। अपनी माता व पिता से उनका लालन व पालन भी न होकर मथुरा से ढाई मील दूर यमुना के दूसरी पार के गांव गोकुल में भाई बलराम एवं

बहिन सुभद्रा के साथ हुआ। उनकी शिक्षा वैदिक गुरुकुलीय पद्धति से हुई थी। निर्धन सुदामा आपके सहपाठी एवं मित्र थे। आपकी मित्रता भी इतिहास के पृष्ठों पर अंकित है। कृष्ण जी द्वारिका के राजा बने थे। उन्होंने अधर्मी राजाओं का विरोध किया था तथा अपने मामा कंस सहित अनेक दुष्ट अधर्मी राजाओं को अपने बुद्धिबल, शक्ति एवं नीति निमित्ता के आधार पर अपने मित्रों व सहयोगियों के द्वारा समाप्त किया। महाभारत से पूर्व आर्यावर्त्त राज्य के उत्तराधिकारी पाण्डव पुत्रों के राज्य में अनेक प्रकार की बाधायें उत्पन्न की गईं। राज्य के लोभ से छलपूर्वक पाण्डवों को द्यूत क्रीड़ा के लिये प्रेरित किया गया था और कौरव पक्ष के धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन ने उनके समस्त राज्य सहित युधिष्ठिर की पत्नी द्रोपदी पर भी अधिकार कर उसका भरी सभा में अपमान किया था। यदि कृष्ण जी द्यूत क्रीड़ा व द्रोपदी अपमान के अवसर पर आस पास होते तो निश्चय ही वहां पहुंच कर इन कार्यों को कदापि न होने देते। बाद में पता चलने पर वह पाण्डवों से मिले और उन्हें धर्म पालन तथा राज्य की पुनः प्राप्ति के लिये धर्मपूर्वक प्रयत्न करने में सहयोग किया और प्रतिपक्ष द्वारा धर्म, कर्तव्य व उनके वचनों का पालन न करने पर महाभारत युद्ध की योजना भी पाण्डव पक्ष के साथ मिलकर तैयार की थी। इस युद्ध में अनेक राज्यों के राजाओं व उनकी सेनाओं ने भाग लिया था। दोनों ओर बड़े-बड़े वीर योद्धा थे। कृष्ण और पांच पाण्डवों को छोड़कर अधिकांश योद्धा इस महायुद्ध में काल के गाल में समा गये थे। पाण्डव, उनके मित्र व अर्जुन के सारथी कृष्ण का पक्ष सत्य व धर्म पर आधारित था जिसकी अन्त में विजय हुई। पाण्डवों की इस विजय में श्री कृष्ण का प्रमुख योगदान था। यदि वह न होते तो न युद्ध होता, न ही धर्म की जय होती। ऐसी स्थिति में इतिहास कुछ और होता जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। अधर्म का विरोध और धर्म के पक्ष में सहयोग करने की शिक्षा हमें श्री कृष्ण जी की महाभारत में भूमिका से मिलती है। हमें भी जीवन में अधर्म छोड़ कर धर्म पर ही अडिग व अकम्पायमान रहना चाहिये। ऐसा होने पर ही वर्तमान एवं भविष्य में वैदिक धर्म एवं संस्कृति की रक्षा हो सकती है।

श्री कृष्ण जी ईश्वर भक्त, वेद भक्त, योगी एवं ब्रह्मचर्य व्रत के आदर्श पालक थे। श्री कृष्ण जी ने विदर्भ के राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मणी जी से पूर्ण युवावस्था में विवाह किया था। विवाह के बाद दोनों पति-पत्नी में संवाद हुआ कि विवाह का अर्थ क्या है। विवाह सन्तान के लिये किया जाता है। इस पर सहमति होने पर श्री कृष्ण जी ने रुक्मणी जी से पूछा कि तुम कैसी सन्तान चाहती हो? इसका उत्तर मिला कि श्री कृष्ण जैसी सन्तान चाहिये। इस पर श्री कृष्ण ने रुक्मणी जी को उनके साथ रहकर तपश्चर्या एवं ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा की जिस पर दोनों सहमत हुए। इसके बाद श्री कृष्ण एवं माता रुक्मणी जी ने उत्तराखण्ड के वनों व पर्वतों में 12 वर्ष रहकर ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन व्यतीत किया। अवधि पूरी होने पर उन्होंने प्रद्युम्न नाम के पुत्र को प्राप्त किया। महाभारत में लिखा है कि जब प्रद्युम्न सायं अपने पिता कृष्ण जी के साथ अपने राजमहल में आते थे तो रुक्मणी जी कृष्ण व प्रद्युम्न दोनों की एक समान आकृति व गुणों की समानता को देखकर कौन उनका पति और कौन पुत्र है, इसे पहचानने में कठिनाई अनुभव करती थीं। ब्रह्मचर्य की यह महिमा श्री कृष्ण जी और माता रुक्मणी ने अपने जीवन में स्थापित की थी। यह ब्रह्मचर्य व्रत भी आर्यों व वैदिक धर्मियों के लिये शिक्षा व प्रेरणा ग्रहण करने के लिए महत्वपूर्ण है। यह भी बता दें कि महाभारत युद्ध के समय कृष्ण व अर्जुन लगभग

120 वर्ष की आयु के थे। यह बात महाभारत में लिखी है। आज पूरे विश्व में इस आयु का व्यक्ति मिलना असम्भव है। यह वैदिक धर्म एवं संस्कृति की विशेषता है। इसे श्री कृष्ण जी के जीवन की विशेषता भी कह सकते हैं। श्री कृष्ण जी का यदि हम अनुकरण करेंगे तो हममें भी ब्रह्मचर्य के सेवन से दीर्घायु प्राप्त होने की सम्भावना बनती है।

कौरव सेना में प्रमुख योद्धाओं में भीष्म पितामह, राजा कर्ण, आचार्य द्रोणाचार्य और दुर्योधन आदि प्रमुख बलवान योद्धा थे। किसी शत्रु द्वारा इन पर विजय पाना कठिन व असम्भव-प्राय: था। यदि कृष्ण जी द्वारा राजनीति व युद्धनीति का आश्रय न लिया होता तो उन्होंने महाभारत में जो भूमिका निभाई वह न निभाई होती और पांण्डवों को युद्ध में विजय मिलनी कठिन व असम्भव थी। अत: देश एवं धर्म की रक्षा के हित में योगेश्वर श्री कृष्ण ने पाण्डवों व अर्जुन को उचित व आवश्यक सुझाव दिये और उनसे इनका पालन कराया जिसका परिणाम था कि अविजेय योद्धा भीष्म, द्रोणाचार्य, दुर्योधन और कर्ण आदि पराजित किये जा सके। इस प्रकार से महाभारत युद्ध की विजय का अधिकांश श्रेय श्री कृष्ण जी को जाता है। युद्ध में विजय प्राप्ति धर्म के साथ नीतिमत्ता का पालन करने से होती है। यह शिक्षा श्री कृष्ण जी के जीवन से ज्ञात होती है।

महाभारत युद्ध समाप्त होने के बाद श्रीकृष्ण जी की प्रेरणा से पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया। इस यज्ञ में श्री युधिष्ठिर जी को चक्रवर्ती सम्राट बनाया गया था। इस राजसूय यज्ञ में पूरे विश्व के राजा आये थे और उन्होंने महाराज युधिष्ठिर को वस्तुओं व स्वर्ण आदि के रूप में योग्य भेंटे दी थी व उन्हें अपना सम्राट स्वीकार किया था। इतिहास में ऐसा राजसूय यज्ञ इसके बाद पूरे विश्व में कहीं देखने को नहीं मिला। ईश्वर करे कि हमारा देश श्री राम व श्री कृष्ण सहित वेद, आचार्य चाणक्य तथा ऋषि दयानन्द जी की शिक्षाओं के आधार पर आगे बढ़े। इसी में वैदिक धर्म एवं देश का गौरव एवं रक्षा सम्भव है।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्री कृष्ण जी के गुणों व चरित्र की भूरि भूरि प्रशंसा की है। श्री कृष्ण जी के महाभारत में उपलब्ध सत्य इतिहास पर आधारित अनेक आर्य विद्वानों के लिखे जीवन चरित्र मिलते हैं जिनमें पं॰ चमूपित, डॉ॰ भवानीलाल भारतीय, लाला लालजपत राय आदि प्रमुख है। स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा सम्पादित महाभारत एवं पं॰ सन्तराम जी द्वारा प्रणीत संक्षिप्त महाभारत भी अत्यन्त सराहनीय एवं पठनीय ग्रन्थ है। अन्य अनेक विद्वानों के ग्रन्थ भी पठनीय एवं संग्रहणीय हैं। इससे सभी पाठकों को लाभ उठाना चाहिये। ओ३म् शम्। ❑❑

ब्रह्मचर्य बल

एक बार सरदार विक्रमसिंह ने निवेदन किया—महाराज सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। स्वामी जी ने कहा, "यह सत्य है, ऐसा ही शास्त्रें में वर्णित है।" सरदार जी ने कहा, "शास्त्र में लिखे का प्रमाणित होना कठिन है । आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में ऐसा बल प्रतीत नहीं होता।" उस समय तो स्वामी जी मौन रहे परन्तु कुछ घण्टों के पश्चात् सरदार जी अपनी बग्घी पर सवार हुए। स्वामी जी ने उसका पहिया पीछे से पकड़ लिया । घोड़ों ने पूरा बल लगा दिया परन्तु बग्घी नहीं सरकी। सरदार जी ने पीछे मुड़कर देखा तो छोड़ दिया।

महर्षि ने हँसकर कहा—"यह ब्रह्मचर्य बल का प्रमाण मिल गया ।"

योग

लेखक : महात्मा नारायण स्वामी

योग के लक्षण:–"युज" धातु से योग शब्द सिद्ध होता है जिस धातु के अर्थ मिलना-जुलना आदि के हैं। **युज्यतेऽसौ योगः** । जो युक्त करे, मिलाये उसे योग कहते हैं। योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास ने योगस्समाधिः कहकर योग को समाधि बतलाया है। इसका भाव यह है कि जीवात्मा इस उपलब्ध समाधि के द्वारा सच्चिदानन्दस्वरुप ब्रह्म का साक्षात्कार करे।

योग के आठ अंग :–

योगदर्शन में आठ अंगों का विधान किया गया है। वे अंग इस प्रकार हैं:– (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि।

●**(१) यमः**–कर्म विज्ञान का यह प्रारम्भिक पाठ है कि मनुष्य को यह समझ लेना चाहिये कि सुख दुःख प्राप्ति के दो साधन होते हैं। एक मनुष्य के अपने कर्मफल और दूसरा अन्यों के कर्म । इसलिए मनुष्य के दो कर्तव्य बताये हैं कि वह अपने को भी अच्छा बनाये और अपने को अच्छा बनाने के साथ ही अन्यों को भी अच्छा बनाये। एक मनुष्य अपने को कितना ही अच्छा क्यों न बना ले परन्तु यदि उसके पड़ोसी बुरे हों तो वह कभी भी सुख और शान्ति से नहीं रह सकता। उसे सदैव अपने पड़ोसी के दुष्ट कर्मों से दुःखी होना पड़ेगा। यदि कोई व्यक्ति योग की प्रक्रिया को काम में लेना चाहता है तो यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसके चारों और शान्ति का वातावरण हो अन्यथा वह कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए योग के आठ अंगों में सबसे पहले शान्ति का विधान किया गया। उस वातावरण के उत्पन्न करने का साधन यम है ।

यम पांच हैं–(क) अहिंसा (ख) सत्य (ग) अस्तेय (घ) ब्रह्मचर्य (ङ) अपरिग्रह ।

(क) अहिंसा :–मन, वाणी और क्रिया से किसी भी प्राणी को तकलीफ न देना। जब योगी पूर्णरूप से अहिंसक हो जाता है तब उसके प्रति सब प्राणी वैर का त्याग कर देते हैं। महाकवि बाण ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ **"हर्षचरितम्"** में लिखा है कि एक बार राजा हर्षवर्धन एक तपोभूमि में गया जहां का आचार्य दिवाकर था और जहां अनेक ब्रह्मचारी शिक्षा पाते थे, वहाँ राजा ने देखा कि उन अहिंसक गुरु-शिष्यों के प्रभाव से शेरों ने उनके लिए हिंसावृत्ति को त्याग दिया था और वे उनकी तपोभूमि में इस प्रकार रहते थे जैसे पाले हुए घरेलू कुत्ते ।

(ख) सत्य :–मन, वचन और क्रिया तीनों में सत्य के प्रतिष्ठित होने से योगदर्शन भाष्यकार व्यास के लेखानुसार, योगी की वाणी अमोघ हो जाती है और फिर वह जो कुछ भी कहता है वह सत्य ही हो जाता है। यदि वह किसी को कह दे कि तू धार्मिक हो जा तो वह धार्मिक हो जाता है इत्यादि। (देखें योगदर्शन २/३६ का व्यासभाष्य)

(ग) अस्तेय :–मन,वाणी और क्रिया किसी से भी चोरी न करना और न चोरी की भावना रखना अस्तेय कहलाता है।

(घ) ब्रह्मचर्य :–शरीर में उत्पन्न हुए रज-वीर्य की रक्षा करते हुए लोकोपकारक विद्याओं का अध्ययन करना। मनुष्य के भीतर ब्रह्मचर्य से **"मातृवत्परदारेषु की भावना"** उत्पन्न होकर उसे संसार के लिए निर्दोष बना देती है।

(ङ) अपरिग्रह :—धन के संग्रह करने, रखने और खोये जाने, धन की इन तीनों आवश्यकताओं को दु:खजनक समझ उससे अधिक जिससे जीवन यात्रा पूरी हो सके, धन की इच्छा न करना अपरिग्रह कहा जाता है।

●(2) **नियम**:—अपने कर्म के फल से दु:खी न होना पड़े इसलिए योगी को नियमों का पालन करना चाहिये, वे नियम ये हैं-

(क) शौच :— वाह्य और अन्त:करणों को पवित्र रखना शौच है।

(ख) सन्तोष :— पुरुषार्थ से जो कुछ प्राप्त हो उससे अधिक की इच्छा न करना और अन्यों के धनादि को अपने लिए लोष्ठवत् (मिट्टी के समान) समझना सन्तोष है।

(ग) तप :— सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ, सुख-दु:ख, मान-अपमान को समान समझते हुए संयमित जीवन व्यतीत करना तप कहलाता है।

(घ) स्वाध्याय :—ओंकार का श्रद्धापूर्वक जप करना और वेद, उपनिषद आदि उद्देश्य साधक ग्रन्थों का निरन्तर अध्ययन करना स्वाध्याय है।

(ङ) ईश्वरप्रणिधान :— ईश्वर का प्रेम हृदय में रखते हुए और उसको अत्यन्त प्रिय और परमगुरु समझते हुए ,अपने समस्त कर्मों को उसके अर्पण करना ।

ये पाँच नियम हैं । इनसे मनुष्य अधर्म और पाप से बचा रहता है।

●(3) **आसन**:—जिस स्थिति में मनुष्य सुखपूर्वक बैठ सके,जिससे विघ्न न पड़े। यद्यपि आसनों की संख्या ८४ कही जाती है और उनमें से प्रत्येक की उपयोगिता भी है परन्तु राजयोग में आसन सुखपूर्वक बैठने ही का नाम है।

●(4) **प्राणायाम** :— योगियों में प्राणायाम की बड़ी उपयोगिता है। योगदर्शन में बताया गया है कि प्राणायाम से प्रकाश पर जो तमादि का आवरण आ जाता है वह क्षीण हो जाता है। (योगदर्शन २/५२) और प्रत्याहार आदि आगे के अंगों के सिद्ध करने की योग्यता भी आ जाती है। (योगदर्शन २/५३)

प्राणायाम के तीन भाग हैं— पूरक, रेचक और कुम्भक ।

नथूनों द्वारा श्वासवायु को ग्रहण करना पूरक है।

नथूनों से उस वायु को बाहर निकालना रेचक है।

बाहर या भीतर श्वास न ले जाकर श्वास को जहाँ का तहाँ रोके रहना कुम्भक है।

कुम्भक दो प्रकार के होते हैं पूरकान्तक कुम्भक और रेचकान्तक कुम्भक।

कुम्भक का दूसरा नाम स्तम्भवृत्ति अर्थात् गतिविच्छेद होना।

महर्षि दयानन्द जी द्वारा प्रदर्शित प्राणायाम :—

जैसे वमन करते हैं, उसके समान श्वास को थोड़ा जोर से बाहर निकाल दे, और सुखपूर्वक जितना बाहर रोक सकें,रोकें अर्थात् वाह्य कुम्भक करें। फिर धीरे धीरे श्वास को अन्दर भरें, फिर उस श्वास को सुगमता पूर्वक अन्दर ही रोक दें, अर्थात् आभ्यान्तर कुम्भक करें। फिर श्वास को बाहर निकाल दें।

प्राणायाम के समय श्वास-प्रश्वास की क्रियाऐं नाक द्वारा ही होनी चाहिये, मुख बन्द रहे। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार बार बार प्राणायाम करने पर प्राण उपासक के वश में हो जाते हैं,और प्राणों के स्थिर हो जाने पर मन भी एकाग्र हो जाता है। मन के एकाग्र हो जाने से आत्मा भी स्थिर और एकाग्र हो जाती है।

(ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका)

●(5)**प्रत्याहार:–** इन्द्रियों का अपने विषयों से पृथक हो जाना प्रत्याहार कहलाता है। इसका अर्थ यह है कि आत्मा का सामर्थ्य जो बहिर्मुखी वृत्ति द्वारा चित्त और इन्द्रियों के माध्यम में व्यय हो रहा था अब काम में आने से रुककर आत्मा में लौट गया इसीलिए प्रत्याहार का उद्देश्य योग–जगत में आत्म–शक्ति का एकत्रीकरण समझा जाता है। आत्मशक्ति शरीर से पृथक होकर, आत्मा को हाथ के शस्त्र की तरह समझने लगता है और वह अपना अधिकार समझता है कि उसे जब चाहे ,हाथ की वस्तु की तरह पृथक कर दे। जब योगी यम और नियम का पालन करते हुए भोजनादि की व्यवस्था, योगियों की मर्यादानुकूल रखने लगता है और प्राणायाम का अभ्यास करते हुए १० मिनट तक साँस रोके रखता है तब उसका अपनी इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है और वह धारणा के अभ्यास करने में समर्थ होता है।

●(6) **धारणा:–** चित्त को किसी केन्द्र पर केन्द्रित करना धारणा है। जो शक्ति प्रत्याहार के अभ्यास से एकत्रित हुई है उसे नाभिचक्र, नासिका के अग्रभागादि पर लगा देना धारणा है। प्रत्याहार से इन्द्रियों पर अधिकार होता है तो ध ारणा से मन अधिकृत हुआ करता है। जब प्राणायाम का अभ्यास इतना बढ़ जाता है कि २१ मिनट ३६ सैकेण्ड बिना श्वास के रह सके तब इनसे अनायास धारणा की सिद्धि से 'ध्यान' के अभ्यास करने योग्य योगी हो जाता है।

●(7) **ध्यान:–** योगदर्शन में, धारणा में ज्ञान का एक सा बना रहना ध्यान कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस लक्ष्य पर चित्त एकाग्र हुआ है, इस एकाग्रता का ज्ञान, एक सा निरन्तर बना रहे। सांख्य के आचार्य महामुनि कपिल ने **"ध्यानं निर्विषयं मनः"** सूत्र के द्वारा मन के निर्विषय होने का नाम ध्यान बतलाया है। परन्तु भाव, दोंनो का एक ही है। जब मन किसी लक्ष्य पर एकाग्र हो रहा है तब निश्चित है कि वह निर्विषय है क्योंकि **'युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिंगम्'** की व्यवस्थानुसार, मन एक समय में, दो विषयों का ग्रहण नहीं कर सकता। विषय का अभिप्राय साधारणतया इन्द्रिय विषय होता है, इसलिए मन जब किसी लक्ष्य पर एकाग्र है और एकाग्रता में निरन्तरता है,तब यह योगदर्शनानुसार ध्यान है और इस ध्यान में मन निर्विषय है। स्पष्ट है कि भाव दोनों का एक ही है। प्राणायाम का अभ्यास इतना हो जाने पर जिससे योगी ४२ मिनट १२ सैकेण्ड श्वास रोके रखे यह ध्यान की अवस्था योगी को प्राप्त हो जाती है।

● **समाधि:–**ध्यानावस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय इन तीनों का ज्ञान योगी को बना रहता है,परन्तु जब ध्याता भूल जाये कि वह ध्याता है और यह भी कि ध्यान रुपी कोई क्रिया वह कर रहा है, इसका भी उसे ज्ञान नहीं रहता और केवल ध्येय उसके लक्ष्य में रह जाता है तो उस अवस्था को समाधि कहा जाता है।

इस अवस्था में योगी को दुःख, सुख, शीतोष्णादि का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। जब उसकी दृष्टि में न कोई मित्र है और न शत्रु। वह न तो किसी बात में अपना मान समझता है और न अपमान; सोना और चाँदी उसके लिए मिट्टी के ढेले से अधिक प्रतिष्ठा की वस्तु नहीं रह जाती।

प्राणायाम के द्वारा जब १ घंटा २६ मिनट और २४ सैकेण्ड तक योगी बिना श्वास के रहने लगता है, तब उसे समाधि की सिद्धि हो जाती है।

● **अष्टांग योग का परिणाम :–**जब इस प्रकार से योगी अष्टांग योग का अभ्यास करता है तब इससे उसका चित्त स्थिर रीति से एकाग्र हो जाता है और इस चित्त की एकाग्रता से उसे सम्प्रज्ञात योग की सिद्धि हो जाती है। ❑❑

[प्रस्तुति : **भूपेश आर्य**, "योग रहस्य" पुस्तक से, लेखक : महात्मा नारायण स्वामी]

स्वामी भद्राचार्य जी का अनर्गल प्रलाप

—डॉ० विवेक आर्य (मो०-८०७६९८५५१७)

स्वामी भद्राचार्य जी का एक वीडियो प्रचारित हो रहा है। भद्राचार्य जी ने स्वामी दयानन्द जी पर अनावश्यक टिप्पणी करते हुए कहा कि स्वामी जी ने रामायण और महाभारत को काल्पनिक बताया है। भद्राचार्य जी का कहना है कि श्री राम और श्री कृष्ण जी का वेदों में वर्णन है।

भद्राचार्य जी ने यह टिप्पणी कर अपनी अज्ञानता का परिचय दिया है। उनकी भ्रान्ति का निवारण आवश्यक है। राम और कृष्ण मानवीय संस्कृति के आदर्श पुरुष हैं। कुछ बंधुओं के मन में अभी भी यह धारणा है कि महर्षि दयानन्द और उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज राम और कृष्ण को मान्यता नहीं देता है। प्रत्येक आर्य अपनी दाहिनी भुजा ऊँची उठाकर साहस पूर्वक यह घोषणा करता है कि आर्यसमाज राम-कृष्ण को जितना जानता और मानता है, उतना संसार का कोई भी आस्तिक नहीं मानता। कुछ लोग जितना जानते हैं, उतना मानते नहीं और कुछ विवेकी-बंधु उन्हें भली प्रकार जानते भी हैं, उतना ही मानते हैं।

1. मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है–

प्रश्न-रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापित किया है। जो मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्ति स्थापना क्यों करते और वाल्मीकि जी रामायण में क्यों लिखते ?

उत्तर-रामचन्द्र के समय में उस मन्दिर का नाम निशान भी न था किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ 'राम' नामक राजा ने मंदिर बनवा, उसका नाम 'रामेश्वर' धर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजी को ले हनुमान आदि के साथ लंका से चले, आकाश मार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे, तब सीताजी से कहा है कि–

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।
सेतु बंध इति विख्यातम् ॥

वा० रा०, लंका काण्ड (देखिये–युद्ध काण्ड, सर्ग 123, श्लोक 20-21)

'हे सीते! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास किया था और परमेश्वर की उपासना-ध्यान भी करते थे। वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है, उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहाँ प्राप्त हुई । और देख ! यह सेतु हमने बांधकर लंका में आ के, उस रावण को मार, तुझको ले आये।' इसके सिवाय वहां वाल्मीकि ने अन्य कुछ भी नहीं लिखा।

(द्रष्टव्य–सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लासः, पृष्ठ-303)

इस प्रकार उक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान राम स्वयं परमात्मा के परम भक्त थे। उन्होंने ही रामसेतु बनवाया था।

2. महर्षि दयानन्द रामायण और महाभारत को काल्पनिक मानते तो सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय सम्मुलास में पठन-पाठन विषय के अंतर्गत स्वामी जी वाल्मीकि रामायण और महाभारत के पढ़ने का विधान नहीं करते।

महर्षि स्वामी दयानन्द लिखते हैं–

"तत्पश्चात मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण और महाभारत के उद्योगपर्व अंतर्गत विदुरनीति

आदि अच्छे प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तम संभ्यतागति हो, वैसे काव्यरीति अर्थात पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य, विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें ।"

इससे स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल सकता ।

3. महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज श्री कृष्ण जी को योगिराज के रूप में सम्मान देता है। महर्षि दयानन्द अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्री कृष्ण जी महाराज के बारे में लिखते हैं–

"पूरे महाभारत में श्री कृष्ण के चरित्र में कोई दोष नहीं मिलता एवं उन्हें आप्त (श्रेष्ठ) पुरुष कहा है। स्वामी दयानन्द श्री कृष्ण जी को महान् विद्वान् सदाचारी, कुशल राजनीतीज्ञ एवं सर्वथा निष्कलंक मानते हैं फिर श्री कृष्ण जी के विषय में चोर, गोपियों का जार (रमण करने वाला), कुब्जा से सम्भोग करने वाला, रणछोड़ आदि प्रसिद्ध करना उनका अपमान नहीं तो क्या है?"

बोलो योगिराज श्री कृष्ण जी की जय।

4. महर्षि दयानन्द के पूना प्रवचन में इक्ष्वाकु से लेकर महाभारत पर्यन्त इतिहास पर विस्तार से चर्चा है। अगर स्वामी जी रामायण और महाभारत को काल्पनिक मानते तो इनकी चर्चा क्यों करते?

5. रामभद्राचार्य जी वेद मन्त्रों में श्री राम जी का वर्णन बता रहे हैं। महर्षि दयानन्द वेदों को इतिहास की पुस्तक नहीं मानते क्यूंकि वेदों का ज्ञान सृष्टि के आदि में प्रकट हुआ है। ऐसे में उनमें इतिहास कहाँ से वर्णित होगा।

महर्षि दयानन्द इस विषय पर सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं–

"इतिहास जिसका हो, उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है । वेदों में किसी का इतिहास नहीं। किन्तु जिस-जिस शब्द से विद्या का बोध होवे, उस-उस शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य की संज्ञा या विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं है।"

6. क्या वेदों में रामायण के श्रीराम-सीता का वर्णन है ?

वेदों में राम, कृष्ण आदि शब्द मिलते हैं पर इसका अर्थ यह नहीं कि वेदों में श्री राम और श्री कृष्ण जी आदि का वर्णन है। उनका अर्थ और अभिप्राय भिन्न है।

ऋग्वेद 2/2/8 में आये राम्या: का अर्थ स्वामी दयानन्द ने रात्रि किया है। ऋग्वेद 6/65/1 में आये राम्यासु का अर्थ स्वामी दयानन्द ने रात्रि किया है। ऋग्वेद 3/34/12 में आये रामी: का अर्थ स्वामी दयानन्द ने आराम की देने वाली रात्रि किया है। ऋग्वेद 10/3/3 में आये राम शब्द का सायण ने अर्थ कृष्ण रंग वाला किया है। इस प्रकार से राम शब्द के अर्थ वेदों में काले रंग, अंधकार और रात्रि के रूप में हुए हैं। इनसे रामायण के पात्र श्रीराम किसी भी प्रकार से सिद्ध नहीं होते। वैद्यनाथ शास्त्री और अमर सिंह जी निरुक्त 12/13 का उद्धरण देकर राम शब्द से काला ग्रहण करते हैं।

अथर्ववेद 13/3/2668 में अर्जुन को द्रौपदी (कृष्णा) का पुत्र बताया गया है। वेदों में इतिहास मानने वाले क्या यह स्वीकार कर सकते हैं कि अर्जुन द्रौपदी का पुत्र था? नहीं । स्वामी विद्यानन्द शतपथ ब्राह्मण 9/2/3/30 का प्रमाण देते हुए लिखते हैं कि यहाँ कृष्णा अर्थ रात्रि का है एवं रात्रि से उत्पन्न होने आदित्य अथवा दिन (अर्जुन) उसका पुत्र है । इस प्रकार से यहाँ इतिहास वर्णन नहीं है ।

7. क्या वेदों में श्रीकृष्ण-राधा, अर्जुन आदि महाभारत के पात्रें का वर्णन है ?

वेदों में कृष्ण-राधा शब्द अनेक मन्त्रों में आया है। वेदों में इतिहास मानने वाले प्राय: कृष्ण शब्द से महाभारत के श्रीकृष्ण जी का वेदों में वर्णन दर्शाने का प्रयास करते हैं। राधा का वर्णन

महाभारत में नहीं मिलता। वेदों में कृष्ण शब्द का अर्थ काला रंग, आकर्षक, काला दिन, काला बादल आदि हैं ।

महर्षि दयानन्द भाष्य अनुसार ऋग्वेद 1/58/4 में कर्षणरूप गुण, ऋग्वेद 1/73/7 और ऋग्वेद 1/92/5 में काला रंग, ऋग्वेद 1/101/4 में विद्वान्, ऋग्वेद 1/115/4 में काले-काले अन्धकार, ऋग्वेद 1/164/47 में खींचने योग्य, ऋग्वेद 6/9/1 में रात्रि, ऋग्वेद 7/3/2 में आकर्षण करने योग्य, यजुर्वेद 21/52 में भौतिक अग्नि से छिन्न अर्थात् सूक्ष्मरूप और पवन के गुणों से आकर्षण को प्राप्त, यजुर्वेद 24/30 में काला हरिण, यजुर्वेद 24/40 में काले रंग वाला, यजुर्वेद 29/58 में काले गरने वाला पशु, यजुर्वेद 29/59 में काला बकरा, यजुर्वेद 30/21 में काले रंग वाले आदि अर्थ किया है।

ऋग्वेद 3/51/10 में राधा पद आता है जिससे कुछ लोगों में राधा का वर्णन मानते हैं। स्वामी दयानन्द ने राधा का अर्थ धन किया है। ऋग्वेद 1/22/7 में आये राधाम का अर्थ महर्षि दयानन्द ने विद्या सुवर्ण वा चक्रवर्ती राज्य आदि धन के यथायोग्य किया है।

ऋग्वेद 6/9/1 में आये कृष्ण और अर्जुन का अर्थ स्वामी दयानन्द रात्रि और सरलगमन आदि गुण क्रमशः करते हैं। यजुर्वेद 23/18 में आये अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का अर्थ महर्षि दयानन्द माता, दादी और परदादी करते हैं।

8. वेदों में इतिहास होने की मान्यता अज्ञानता का बोधक है।

अथर्ववेद 3/17/8 में आया है कि जिस प्रकार से ईश्वर ने इस कल्प में सृष्टि की रचना की है, वैसे ही पूर्व कल्प में की थी और आगे भी करेगा। कल्प के आरम्भ में ईश्वर वेदों का ज्ञान प्रदान करता है। इसलिए हर कल्प के आरम्भ में भी वैसे ही करेंगे जैसे करते आये हैं जो लोग वेदों में श्रीराम, कृष्ण आदि का इतिहास मानते हैं। क्या वे यह भी मानेंगे कि हर सृष्टि के हर कल्प में श्रीराम को वनवास का कष्ट भोगना पड़ा? क्या हर कल्प में सीता हरण हुआ ? क्या हर कल्प में कृष्ण को कारागार में जन्म लेना पड़ा? क्या हर कल्प में यादव कुल का नाश हुआ? नहीं ऐसा कदापि सम्भव नहीं है । ईश्वर द्वारा सभी सांसारिक वस्तुओं के नाम वेद से लेकर रखे गए हैं, न कि इन नाम वाले व्यक्तियों या वस्तुओं के बाद वेदों की रचना हुई है । जैसे किसी पुस्तक में यदि इन पंक्तियों के लेखक का नाम आता है तो वह इस लेखक के बाद की पुस्तक होगी । इस विषय में मनुस्मृति 1/21 में आया है कि ब्रह्मा ने सब शरीरधारी जीवों के नाम तथा अन्य पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव नामों सहित वेद के अनुसार ही सृष्टि के प्रारम्भ में रखे और प्रसिद्ध किये और उनके निवासार्थ पृथक्-पृथक् अधिष्ठान भी निर्मित किये।

इन प्रमाणों से रामभद्राचार्य जी का विचार असत्य सिद्ध होता है। इस पर भी उन्हें शंका है तो आर्यसमाज के द्वार इस विषय पर शास्त्रार्थ के लिए खुले हैं। ❑❑

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें । -महर्षि दयानन्द

- **गौ आदि पशुओं की रक्षा से संसार का बड़ा उपकार है ।**
- **गौ आदि पशुओं की रक्षा सभी प्राणियों के सुख के लिये आवश्यकहै ।**
- **गौ आदि पशुओं के नाश होने से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है ।** (महर्षि दयानन्द द्वारा रचित-गो करुणानिधि पुस्तक से)

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७ Post in Delhi R.M.S. ०५-११/०८/२०२४ भार ४० ग्राम	अगस्त २०२४	रजिस्टर्ड नं० DL (DG-11)/8029/2024-26 लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०२४-२६ Licenced to post without prepayment Licence No. U (DN) 144/2024-26

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएँ, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

–दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष एवं तार्किक समीक्षा के लिए
उत्तम कागज, मनमोहक जिल्द एवं सुन्दर आकर्षक मुद्रण
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23x36%16	मुद्रित मूल्य ₹ 80/-	प्रचारार्थ ₹ 60/-
विशेष संस्करण (अजिल्द) 23x36%16	रु. 120/-	रु. 80/-
पॉकेट संस्करण	₹80	₹50
विशिष्ट पॉकेट संस्करण	₹150	₹100
स्थूलाक्षर (अजिल्द) 20x30%8	₹200	₹120
उपहार संस्करण	₹1100	₹750
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी अजिल्द	रु. 250/-	रु. 160/-
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी सजिल्द	रु. 300/-	रु. 200/-

प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं

कृपया एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द जी की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें..

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-6
Ph : 011-43781191, 09650522778
E-Mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में......................................

ग्राम......................................

डा०......................................

जिला......................................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।